सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री सन्तमोहनजी महाराज

सिद्धगुफा प्रकाशन सवांई-282002 (आगरा) उ.प्र.

...त्सव
...ंक

वर्ष : 51 · अंक : 1 अप्रैल 2018

प्रकाशन तिथि : 01.04.2018

मूल्य : एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 350/-

अमृत कण

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥

परोपकारी सज्जन प्रायः प्रजा का दुःख टालने के लिए स्वयं दुःख झेला ही करते हैं, परन्तु यह दुःख नहीं है; यह तो सभी के हृदय में विराजमान भगवान की परम आराधना है।

◆ ◆ ◆

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते।
तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत्॥

विषयों की तृष्णा ही दुःखों का उद्गम-स्थान है। मन्दबुद्धि लोग बड़ी कठिनाई से उसका त्याग कर सकते हैं। शरीर बूढ़ा हो जाता है, पर तृष्णा नित्य नवीन ही होती जाती है। अतः जो अपना कल्याण चाहता है, उसे शीघ्र-से-शीघ्र इस तृष्णा (भोग-वासना) का त्याग कर देना चाहिये।

◆ ◆ ◆

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥

केवल जल के तीर्थ (नदी, सरोवर आदि) ही तीर्थ नहीं हैं। केवल मृत्तिका और शिला आदि की बनी हुई मूर्तियाँ ही देवता नहीं हैं। उनकी तो बहुत दिनों तक श्रद्धा से सेवा की जाय, तब वे पवित्र करते हैं; परन्तु संत पुरुष तो अपने दर्शनमात्र से ही पवित्र कर देते हैं।

◆ ◆ ◆

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये।

इस जीव के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही माना गया है। विषयों में आसक्त होने पर वह बंधन का हेतु होता है और परमात्मा में अनुरक्त होने पर वही मोक्ष का कारण बन जाता है।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 51
अंक 1

अप्रैल
2018

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

दृग्गोचरो दीनबन्धु

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं
यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले।
यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः।।

भावार्थ

हे जिस परमात्मा से यह ब्रह्मा आदि रूप जगत प्रकट होता है और सम्पूर्ण जगत के कारणभूत जिन परमेश्वर में यह समस्त संसार स्थित है तथा अनन्तकाल में यह समस्त जगत् जिनमें लीन हो जाता है, वे दीनबन्धु भगवान आज मेरे नेत्रों के समक्ष दर्शन दें।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

□□□ □□□

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक : आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक : डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक : समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	हमारा विशेष लेख	10
3.	सम्पादकीय	20
4.	श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह	24
5.	तत्त्व विजयी भव – जगदीश राय बंसल	27
6.	परमात्मा की पहचान और उसकी प्राप्ति– श्री रामदास की वाणी	30
7.	शुचिता की आवश्यकता– श्रीमती सरिता भारद्वाज	34
8.	ऋजु योग साधना– डॉ. जे.पी. शर्मा	43
9.	श्री मद्भागवत में विशुद्ध भक्ति– हेमराज चोपड़ा	48
10.	योगेश्वर प्रभु राम लाल– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	52
11.	प्रभुजी को प्रणाम– अनिल दुबे	55
12.	सिद्धयोग पत्रिका का आय–व्यय 2017–2018	56

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

विशेष लेख

मेरे श्री गुरुदेव

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तक वह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता, इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने–अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या हैं और उनका स्वरूप क्या है? यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं, एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्वाचित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भगवद्गीता के 17 वें अध्याय में कहा है :–

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द घन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं ''यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'' इसके अतिरिक्त

यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है कि इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो-जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे-से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल-क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। इसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जहाँ-जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता-पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर-कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक-लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन-यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झार-खण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाई। एक नर-भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर-भक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह

महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है – 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तुछिन्नसंशयाः।' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही ''कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्त्तुम्'' की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया –

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनि–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये –

(1) **योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति।** इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी; निज निर्मित साधनों का प्रचार। इनमें उनका एक प्रमुख साधन था; 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है, इसी प्रकार इन साधनों को करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है।

वह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बनकर स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का आध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए।

इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए :–

1 : सर्वोत्तान – केवल तीन बार, समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।

2 : स्कन्ध चालन – समय पन्द्रह मिनट।

3 : पादचालन – आठ मिनट।

4 : नाभिचालन – पन्द्रह मिनट।

5 : जानुप्रसार – दोनों ओर से तीन बार, समय लगभग चार मिनट।

6 : बालमचलन – केवल एक मिनट।

7 : बच्चे का ध्यान – पाँच मिनट।

8 : नाड़ी संचालन – पन्द्रह मिनट।

9 : उत्क्षेपण – केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी है तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(2) **अमर तत्व साधन** – जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि

साधन को ही लोक–हितार्थ कराया करते थे; किंतु कुछ समय बाद नेति, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा कार्य उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) **शक्तिपात दीक्षा** – जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है– सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्ति पात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैंकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किंतु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते–करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वे लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ–धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो

गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं हैं किन्तु कोई सामर्थ्य वान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15–16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा, ब्रह्मचारी जी! हमारे एक भाई साधू रूप में अभी–अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब यह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने–अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी ख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप बड़े–बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं। वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिए आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जायेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज हैं। किन्तु

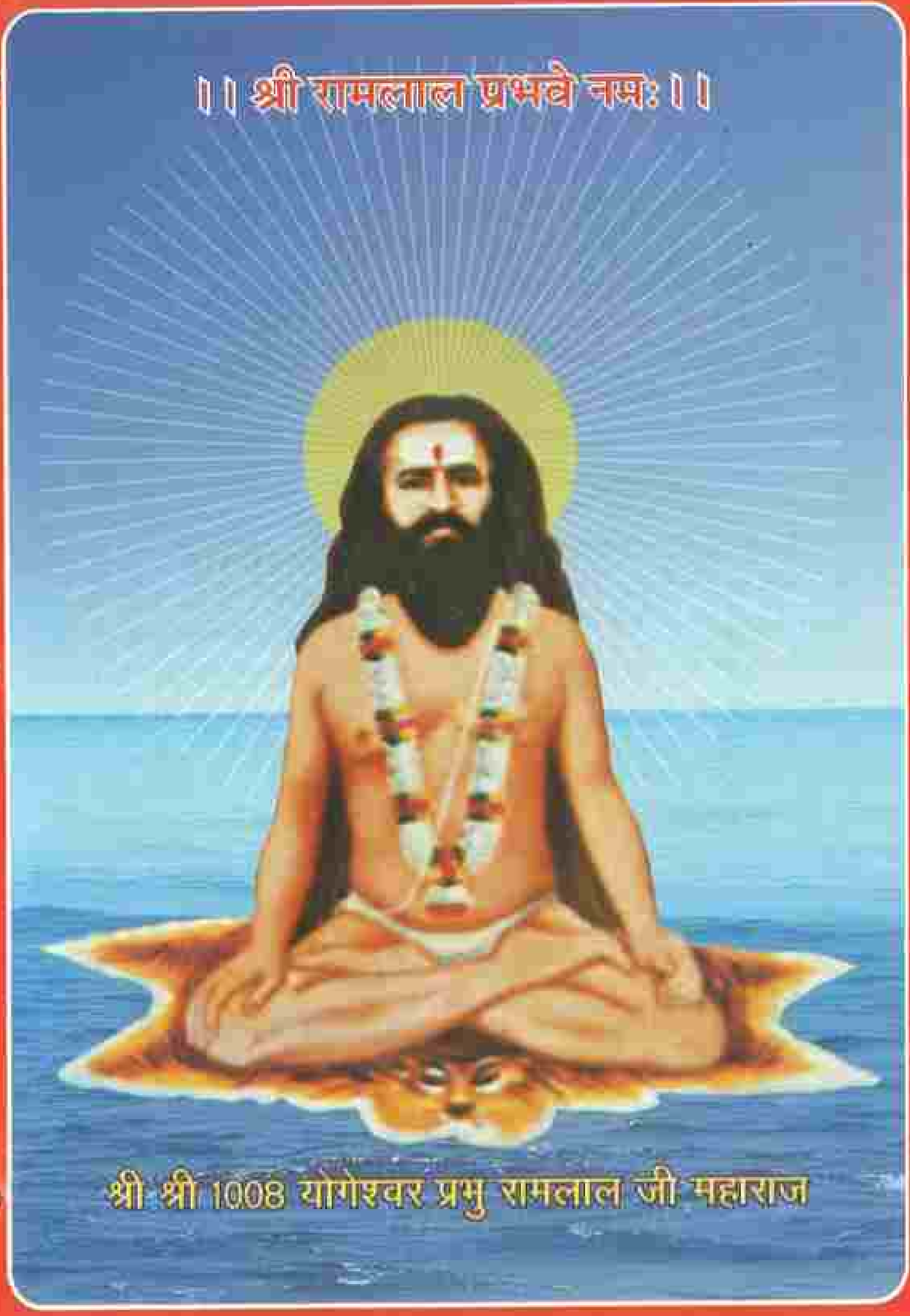
।। श्री रामलाल प्रभवे नमः ।।
श्री श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे–से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्पन पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण–कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा – बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश–गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशान्तिमान् ! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्दृष्टा श्री प्रभुजी ! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ–कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या–क्या कार्य किया, वह शनैः–शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा जिससे पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

हमारा विशेष लेख—

परम सिद्ध योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी एवं उनकी अचिन्त्य योगशक्ति

—योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योगी की अचिन्त्य शक्तियों का वर्णन में योगशिखोपनिषद में निम्नांकित प्रकरण में मिलता है—

इच्छारूपो हि योगीन्द्रः स्वतन्त्रत्वजरामरः।
क्रीडते त्रिषु लोकेषु लीलया यत्र कुत्रचित्।।
अचिन्त्य शक्तिमान्योगी नानारूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रियः।।
नासौ मरणमाप्नोति पुनर्योग बलेन तु।
हठेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः।।
मरणं यत्र सर्वेषां तत्रासौ परिजीवति।
यत्र जीवन्ति मूढास्तु तत्रासौ मृत एव वै।।
कर्त्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते।
जीवन्मुक्तः सदा स्वच्छः सर्वदोषविवर्जितः।।

अर्थात् योगीन्द्र लोग इच्छारूप होते हैं। अपनी इच्छा से ही ये लोग तीनों लोकों में स्वतन्त्र गति से विचरते रहा करते हैं। उनकी शक्ति इतनी अद्‌भुत होती है कि उसको हर व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। वे लोग एक क्षण में हजारों रूप बना सकते हैं और फिर उनका संहार भी कर सकते हैं। वे लोग हठयोग की साधना द्वारा अपने को मार चुके होते हैं, कठिन योग साधनायें करते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे लोग फिर मरणधर्मा नहीं रहते। क्योंकि जो व्यक्ति हठ–साधना द्वारा अपने आप को मार लेता है उसका फिर मरण नहीं होता। योगीन्द्र लोग विजितेन्द्रिय होते हैं। जिन वासनाओं में गर्तों में सांसारिक लोग हर समय मरते रहते हैं वहाँ पर योगेश्वर लोग सर्वथा जीवित ही रहते हैं और जिन वासना क्षेत्रों के अन्दर दुनिया के लोग

हर्षोल्लास के साथ भोगासक्ति में अपने आपको जिन्दा रखते हैं वहाँ पर वे लोग सर्वथा मरे हुए के समान रहते हैं। ऐसे योगीजनों का कुछ भी कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रह जाता। उन लोगों की स्थिति कर्मन्धन से परे हो जाती है। वे लोग सदैव जीवन्मुक्त, स्वच्छ एवं दोषरहित होते हैं। इस प्रकार अन्यान्य स्थानों में भी योगी के अद्भुत ऐश्वर्य का वर्णन हमारे शास्त्रकारों ने किया है। भगवान् पतञ्जलिदेव ने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में योगी के अविकार का वर्णन करते हुए कहा है—

परमाणु परममहत्वान्तोऽस्य वशीकारः।

अर्थात् जिस समय योगी अपने चित्त को सूक्ष्म तत्वों में लगाना आरम्भ करता है तो परमाणुपर्यन्त उसके साक्षात्कार का विषय बन जाता है और यदि वह स्थूल की ओर बढ़ता है तो पंचमहाभूत, अहंकार और इन्द्रियों का साक्षात्कार करता हुआ मूल प्रकृति पर्यन्त बढ़ जाता है।

नेपाल हिमालय की एवं तिब्बत व भूटान की सीमास्थली हिमाच्छादित प्रदेश से पतितोद्धार के निमित्त उतरकर आने वाले सद्गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्रीरामलाल जी महाराज की शक्तियों का मैं क्या परिचय दूँ? मैंने अपने जीवन में उनको हर समय शक्तिमय देखा और उनके अद्भुत योगैश्वर्य ने ही मेरे मन को उनके चरणारविन्दों की ओर सहसा आकर्षित कर दिया।

आँखों देखी अद्भुत घटना

यह घटना सन् 1929 की है। जिसमें मैंने अपने जीवन में पहली बार श्री गुरुदेव की योगशक्ति के अद्भुत प्रवाह को अपनी आँखों देखा था। मैं उन दिनों अमृतसर में रहता था, वह मेरा अध्ययन काल था। श्री सद्गुरु देव जी के दर्शन एवं योगदीक्षा, मैं पहले से ही प्राप्त कर चुका था। अकस्मात् मैंने किसी से सुना कि योगसाधन आश्रम ऋषीकेश से मेरे दो बड़े गुरुभाई यहाँ कहीं आये हुए हैं, पूछताछ करने पर पता चला कि रेलवे स्टेशन के पास लाला गागरमल की धर्मशाला में वे लोग ठहरे हुए हैं। मैंने वहाँ जाकर देखा कि परम आदरणीय मुलखराज जी महाराज एवं श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी यहाँ आये हुए थे। श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी उस समय ध्यानस्थ थे। मेरे वहाँ पहुँचने के कुछ समय बाद उनकी ध्यान–समाधि खुली और वे ये शब्द कहते हुए उठे—"हे सर्वशक्तिमान् सर्वसमर्थ योगेश्वर! आप आप ही हैं। इस कलिकाल में आप जैसा कोई देखने में नहीं आता।" मैंने आदरणीय भाई श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी से परम विनयपूर्वक पूछा—भाई जी! आप यह क्या कह रहे हैं? इस समय का आपका क्या अनुभव है? कृपा कर बतला दीजिए। उन्होंने कहा—भाई! तुम्हारा इस मार्ग में अभी प्रवेश नहीं है, तुम इन बातों को समझ नहीं सकोगे। इसलिए ये सब बातें पूछने की हठ मत करो, किन्तु मैंने अपने आग्रह को नहीं छोड़ा तो ब्रह्मचारी जी ने मुझे

बतलाया कि कल सायं लगभग 5 बजे श्री गुरुदेव जी ने किसी तपेदिक के रोगी के रोग को अपने शरीर पर आकर्षित कर लिया है और उसके उस महाकष्ट को श्रीप्रभुजी तीन दिन तक लगातार स्वयं भोगेंगे और वह रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जायेगा।

यह घटना बिल्कुल सत्य थी। इस आश्चर्यप्रद एवं चमत्कारिक घटना को देखने के लिए मैं दो दिन बाद ही ऋषिकेश आश्रम पहुँच गया। वहाँ जाने पर देखा कि श्री प्रभुजी नेपाली धूसा (नेपाली कम्बल) ओढ़े आराम कुर्सी पर बैठे हैं और उनकी शरीर की कान्ति बहुत की कृश एवं पीतवर्ण सी मालूम पड़ती है। मैंने जब उनकी इस स्थिति को जानने की इच्छा विनम्रतापूर्वक प्रकट की तो श्री गुरुदेव जी ने मुझे कोई जवाब नहीं दिया, प्रत्युत हँस पड़े और कहा–कोई बात नहीं यह तो शरीर का धर्म है। इस प्रकार की बातें होती रहा करती हैं।

वह रोगी उस समय उनके पास बैठा हुआ था जिसके कष्ट को श्री प्रभुजी ने अपने शरीर पर आकर्षित किया था। उस रोगी ने मुझे बताया–भाई जी! यह मेरे पापों का परिणाम है। मेरे कष्ट को श्री प्रभुजी ने अपनी योग शक्ति से अपने शरीर पर आकर्षित करके भोगा है। मैंने स्वयं अर्धतन्द्रावस्था में श्री प्रभुजी को अपने सामने खड़ा देखा और मुझसे उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था–''ला यह अपना भोग अब हमें दे दे। अब तू इसको नहीं भोग सकेगा। यह कहकर श्री प्रभुजी ने मेरे सारे रोग को अपने शरीर पर आकर्षित कर लिया। मैंने अपने रोग को एक काले रंग के गोले के रूप में अपने मुख से निकलते और श्री प्रभु जी के मुख में प्रवेश करते देखा। जिस समय श्री प्रभुजी ने इस महारोग का अपने शरीर पर आकर्षण किया उस दिन से तीन रोज बाद तक किसी को अपने पास आने नहीं दिया और एकान्त में लेटे रहे।'' मेरे लिए यह अद्भुत घटना थी, जिसको देखकर मैंने योग की विलक्षण शक्ति को पहचाना एवं योगाभ्यास करने की तीव्रतम प्रवृत्ति बनी और उसी दिन से इस मार्ग का तीव्रतम अन्वेषण मेरे मन में प्रारम्भ हो गया तथा परमेश्वर की कृपा से मुझे इसमें अच्छी सफलता मिली।

काय निर्माण

अचिन्त्य शक्तिमान्योगी अपनी निर्माण काय की योग्यता से अनेकों शरीर धारण कर सकता है और फिर उनका संहरण भी कर सकता है।

सद्गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के जीवन चरित्रों में इस प्रकार की बहुत सी घटनायें मिलती हैं। सन् 1911 के लगभग जब श्री प्रभुजी ने कुछ समय संवाई ग्राम में निवास किया था, उस समय यहाँ के सत्संगियों ने एक गुफा बना दी थी जिसमें श्री प्रभुजी निवास किया करते थे। सत्संगी लोग हमेशा उनके चरणारविन्द में आते रहा करते थे। एक

समय एक आश्चर्यजनक घटना घटी। श्री प्रभुजी संवाई ग्राम में तो रहते ही थे किन्तु कभी–कभी इधर–उधर भ्रमणार्थ भी चले जाया करते थे। एक बार श्री प्रभु जी ने कहीं जाने की इच्छा की किन्तु सत्संगी लोगों ने उनको आग्रहपूर्वक रोक लिया। अत: श्री प्रभु जी रुके रहे। किन्तु लोगों के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा जब कन्हीराम बौहरे ने सब लोगों के बीच में आ करके कहा–महाराज जी! आप इतनी जल्दी हम लोगों से पहले कैसे चले आये? कल तो आप हम लोगों के साथ रहे थे व साथ ही गंगास्नान किया था। और कोई गाड़ी तो आती नहीं जो हमसे पहले आप आ गये हैं। उधर गाँव के लोग जो सत्संग में बैठे हुए थे। उन्होंने कहा–तुम क्या कह रहे हो। श्री महाराज जी तो यहाँ से कहीं गए ही नहीं। सभी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर बाद किसी दूसरे व्यक्ति ने आकर कहा–महाराज जी! कल तो आपने मेरी जिन्दगी बचा दी। यदि मैं उस भारी गड्ढे में गिर जाता तो अवश्य मर ही जाता। आपने मेरी बाजू पकड़ कर गिरने से बचा दिया। आपकी इस महान् कृपा का मैं क्या बदला दे सकता हूँ। सत्संग में बैठे लोगों ने जब उससे उस घटना के विषय में पूछा तो घटना बिल्कुल यथार्थ थी। श्रीप्रभुजी ने निर्माण काय से उसके शहर में प्रकट होकर उसकी रक्षा की थी। श्री प्रभुजी स्थूल शरीर से कहीं गये नहीं थे।

इस प्रकार की उनके निर्माण काय को प्रकट करने वाली अनेकानेक घटनायें मेरी स्मृति में हैं। विस्तार के भय से उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है, फिर भी निर्माण काय से सम्बन्ध रखने वाली एक दिव्य घटना का थोड़ा सा संकेत कर देना उचित समझता हूँ।

यशवन्त वाली घटना

अमृतसर में एक पुराने सत्संगी भाई धूप की दुकान करते हैं। वे बहुत छोटी आयु में श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में सेवार्थ आये थे। उनका नाम यशवन्त है और वे दुर्ग्याना में लोहे के फाटक के साथ भाई धनवन्त कौर की धर्मशाला के सामने धूप की दुकान करते हैं। प्रभु जी के निर्माण–काय की एक घटना उनके साथ भी घटित हुई।

अपनी बाल्यावस्था में ही जब उन्होंने मन लगाकर श्री प्रभुजी की सेवा की तो उसी समय उनके मन में यह इच्छा हुई कि– योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज कृपापूर्वक उनके घर चलकर अपनी चरण रज से उस भूमि को पवित्र करें। अत: उन्होंने हठपूर्वक श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में निवेदन किया–प्रभो! आप कृपा करके एक बार मेरे घर चले चलें। श्री प्रभु जी उस दिन अधिक व्यस्त थे। अत: उस प्रार्थना को किसी प्रकार स्वीकार नहीं किया जा सकता था, किन्तु उनकी अत्यन्त विनम्रता को देखकर श्रीप्रभु जी ने कह दिया–बेटा! तू अपने घर चल। हम समय निकालकर अवश्य पहुंच जायेंगे। बालक यशवन्त ने अपने मन में विचार

किया कि श्रीप्रभुजी ने मेरे मन की तुष्टि के लिए ही पहुँच जाने की बात कही है। यदि उन्होंने जाना होता तो मेरे साथ ही चलते या मुझे आज्ञा देते कि तुम अमुक समय मुझे बुलाने के लिए आ जाना, किन्तु उन्होंने कहा है कि हम पहुँच जायेंगे। यह तो टालने वाली बात है। उस सरल बच्चे को यह बोध नहीं था कि श्री प्रभु जी को वह कितना प्रिय है और वे अन्तर्यामी अपनी योगशक्ति से अपने वचन को निभायेंगे। यशवन्त निराश मन से अपने घर पहुँचा। बैठक का दरवाजा खोला तो क्या देखता है कि सामने श्री प्रभु जी स्थूल रूप से विराजमान हैं और हँस रहे हैं। यशवन्त ने श्री प्रभुजी के चरण पकड़ लिये और निवेदन किया–प्रभो! मैं तो अभी रास्ते से ही चलकर आ रहा हूँ और आगे दरवाजा भी बन्द था। आप किस प्रकार आ गये हैं? श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया–बेटा! तुम्हारे पवित्र प्रेम को देखकर तुम्हारे घर आ ही गया हूँ किन्तु यह बात किसी से नहीं कहना।

यह घटना प्रिय यशवन्त धूपवाले ने स्वयं मुझे बतलाई थी। श्री प्रभुजी के काय निर्माण का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

अणिमा का प्रयोग एवं आकाशगमन

योग योगेश्वर सद्गुरुदेव प्रभु श्रीरामलाल जी महाराज जिन दिनों सवाई ग्राम में निवास करते थे उस समय की यह एक दिव्य घटना है। एक बार सत्संग लगा हुआ था। आसपास संवाई, टूण्डला, ऐत्मादपुर आदि के सभी सत्संगी श्री प्रभुजी की सेवा में सत्सगार्थ उपस्थित थे। अकस्मात् प्रसंग वश श्री प्रभुजी ने अपने देशान्तर गमन की इच्छा प्रकट की। प्रभुप्रेमी सत्संगियों पर यह बड़ा आघात था। वे अपने प्यारे गुरुदेव के विद्रोह को सहन नहीं कर सकते थे। इसीलिए उन्हें देशान्तर गमन से रोकने के लिए सभी ने अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना की, किन्तु श्री प्रभुजी को यह स्वीकार नहीं थी और वे जाना ही चाहते थे। लोगों के मन में यह भ्रान्ति पूरी–पूरी बैठ चुकी थी कि आज श्री प्रभुजी कहीं न कहीं अवश्य चले जायेंगे।

इसी भ्रान्ति के वशीभूत होकर उन लोगों ने जब श्री प्रभु जी समाधि के अभ्यास के लिए गुफा के अन्दर गये हुए थे उसी समय गुफा के बाहर से ताला लगा दिया। जिससे श्री प्रभुजी रात्रि को चुपचाप न चले जायें। लोगों का विचार था कि इस समय श्री प्रभुजी समाधि में बैठ गये हैं और प्रातःकाल उनकी समाधि खुलते ही हम ताला खोल देंगे, किन्तु उन लोगों की भावना पूरी न हो सकी। श्री प्रभुजी रात्रि को ही अणिमा सिद्धि के प्रयोग से गुफा के बाहर निकल गये और आकाशमार्ग से उड़कर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चले गये। जिस समय श्री प्रभु जी आकाश मार्ग से उड़ कर जा रहे थे तो संवाई गाँव के खेतों में सूखा नाम का एक धीवर हल चला रहा था। उसने देखा–प्रभुजी आकाशमार्ग से कहीं जा रहे हैं।

पहले तो वह बड़ा भयभीत हुआ। क्योंकि उसके लिये यह पहला दृश्य था, जब उसने आकाश में उड़ते हुए व्यक्ति को देखा। उसके मन में विचार आया कि यह क्या कोई मनुष्य है अथवा यक्ष, किन्नर या देवता है? उसको अत्यन्त भयभीत देखकर श्रीप्रभुजी बोल उठे–अरे सूखा! डरो मत, हम गुफा वाले बाबा हैं। श्री प्रभुजी की वाणी सुन कर उसको कुछ धैर्य हुआ। वह यह पहले ही जानता था कि गुफा वाले बाबा कोई साधारण साधु नहीं है। वे चमत्कारिक महात्मा हैं। उनके वरदान देने से गाँव के लोगों को अनेक प्रकार के महान लाभ हुए हैं जो वर्णन से बाहर हैं। यह जानकर उसके मन में कोई भय नहीं रहा। उसको सान्त्वना देकर आकाशमार्ग से ही श्रीप्रभु जी चले गये। प्रातःकाल होने पर सत्संगी लोग इधर–उधर से आये। गुफाद्वार का ताला खोल कर भीतर जाने की चेष्टा की तो उन्होंने देखा कि भीतर से भी संकल बन्द है।

उन लोगों ने समझा कि श्री प्रभु जी अभी समाधिस्थ हैं, किन्तु काफी समय बीत जाने पर भी जब वे बाहर नहीं निकले तो उन लोगों को कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने गुफा के अन्दर वाले कमरे की दीवाल को काटकर एक बच्चे को अन्दर घुसाया। उस बच्चे ने अन्दर जाकर देखा कि श्री प्रभुजी वहाँ नहीं हैं। उसी समय गुफा में से एक आवाज आई–बेटा! तुम लोगों ने हमें यहाँ हठात् रोकना चाहा था। इसीलिए अब हम यहाँ से चले गये हैं। इस समय तो तुम लोगों को हमारे दर्शन हो नहीं सकते। बारह वर्ष के बाद हम पुनः लौटकर आयेंगे। तुम लोग पहचान सको तो पहचान लेना। ऐसा ही हुआ भी। ठीक बारह वर्ष बाद श्री प्रभुजी पुनः संवाई ग्राम में पधारे और यहाँ के लोग उन्हें नहीं पहचान सके, किन्तु श्री प्रभु जी ने अनुग्रह करके इन लोगों को अपना परिचय दे दिया।

अमोघ वाणी

योगदर्शन में भगवान् पतञ्जलिदेव लिखते हैं–

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

अर्थात् सत्यप्रतिष्ठ योगी की वाणी बिल्कुल अमोघ हो जाती है। वह जो कुछ भी अपनी वाणी से कहता है तत्काल फलीभूत हो जाता है। मैंने संवाई आने पर श्री प्रभुजी के चरित्रों में यह बात स्पष्ट रूप से देखी कि उनकी वाणी पूर्णरूपेण अमोघ थी। उन्होंने मजाक में भी जो कुछ कह दिया वह पूर्णरूपेण सत्य हुआ। जब मैं पहली बार संवाई गांव में आया तो ठाकुर गुलाबसिंह की पक्की कुटिया में ठहरा था। वहाँ पर एक वृद्ध ने मेरे पास आना प्रारम्भ किया। वह कुछ हकलाकर बोलता था। अतः मैं उसकी बात को पूरी तरह समझ नहीं पाता था। आसपास के लोगों ने बूढ़े की भाषा समझायी। वह बुड्ढा कुछ जल्दी–जल्दी बोला करता था। जब भी वह मेरे पास आता यही कहा करता था–महाराज जी! आपके चार गुलाम हैं, उनसे

जितनी अधिक से अधिक सेवा हो सके लेना। भाई! मैं समझा नहीं, ये चार गुलाम क्या हैं? तो उसने स्पष्ट कहकर समझाया—महाराज जी! मेरी तीन शादियाँ हुईं और तीनों स्त्रियाँ स्वर्ग चली गईं। जिस समय मेरी तीसरी स्त्री का देहान्त हुआ तो मेरे मन में अतिशय दुःख हुआ। मैं पागलों की भाँति रोता–बिलखता बड़े–बड़े बाबा (श्री प्रभुजी) के चरणारविन्द में पहुँचा। उन्होंने मेरे दुःख को देखकर कहा—भाई ठकुरी! तू रोता क्यों है? घबरा मत। अभी तेरी चौथी शादी होगी और उससे चार बच्चे होंगे। बुड्ढे ने बताया—सो महाराज मेरी चौथी शादी भी हो गई और जैसा श्री प्रभुजी ने अपने मुखारबिन्द से कहा था वैसा ही हुआ, मेरी चौथी पत्नी से चार पुत्र हुए और वे सभी मौजूद हैं। उनसे आप जो भी बड़ी से बड़ी सेवा ले सकें अवश्य लें। वे लोग अवश्य आपकी सेवा करेंगे।

इस प्रकार की और भी बहुत सी बातें उस गाँव के लोगों ने मुझे बताईं जो श्री प्रभु जी की अमोघ वाणी की शुद्ध प्रतीक हैं।

निर्माण चित्त के द्वारा उपदेश

भगवान् पतंजलिदेव ने योगदर्शन में कहा है—

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात्।

इस मूल के भाष्य में भगवान् व्यासदेव जी लिखते हैं—

अस्मितामात्रं चित्तकारणमुपादाय निर्माण–
चित्तानि करोति। ततः सचित्तानि भवन्तीति।

अर्थात् जब योगी अस्मितानुगत योग का उत्कृष्ट विद्यार्थी बन जाता है तो उसके अन्दर चित्त निर्माण की स्वाभाविक योग्यता आ जाया करती है। ये निर्माणित चित्त क्योंकि ध्यानज होते हैं, इसलिए इनमें कर्माशय की स्थिति नहीं होती। निर्माणित चित्त केवल मात्र अपने मनोभावों का दूसरों को ज्ञान कराने के लिए हुआ करता है। जब योगी अपने इस प्रकार के चित्तों का निर्माण किया करता है तो प्रवृत्ति भेद से उन सबको अपने प्रधान चित्त के अधीन रखकर अपने विनयी लोगों में अनेक प्रकार के उपदेश या वार्तालाप किया करता है। हमारे इतिहास में निर्माण–चित्त के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। जैसे—कपिलदेव ने अपने आसुरी नामक शिष्य को निर्माणचित्त का आश्रय लेकर तन्त्र का उपदेश दिया था।

इसी प्रकार से मैंने श्रीगुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी को अनेकों बार उपदेश करते देखा। यद्यपि उनका निर्माणित चित्त साधक श्रेणी वाला नहीं था। अनादि महासिद्धों की तरह ही ये उनके सहज कार्य थे, किन्तु अभ्यास करने वाला साधक–समुदाय जब उनकी आँखों के सामने बैठ करके अपना–अपना ध्यानाभ्यास किया करता था तो बहुत ही जल्दी अपने ध्येय में तन्मय हो जाया करता था और वे सभी साधक यह देखते थे कि उनके सामने

श्री प्रभुजी विराजमान हैं और उनके चित्त में सूक्ष्म तत्व का स्फुरण करा रहे हैं। कई बार यह देखने में आया कि–ध्यानाभ्यास करने वाले साधकों की कक्षा लगी है और श्री प्रभुजी ने निर्माणचित्त के द्वारा उन सबके पास जाकर एक ही बात का उपदेश दिया और उस तत्व को जिनकी उत्कृष्ट स्थिति थी उन सबने एक ही जैसा अनुभव किया। इस प्रकार अभ्यास करने वाले साधकों को भी थोड़े समय के बाद स्वयं चित्त निर्माण की योग्यता आ जाती थी। पहले पहल श्री प्रभुजी स्वयं ही अपने मन के संकल्प से उनके ध्यानज चित्तों का निर्माण कर दिया करते थे। जिसके फलस्वरूप ध्यानाभ्यासी साधक अपने आपको एक से अनेक रूपों में देखने लगता था और यह स्पष्ट अनुभव करता था कि मैं यहाँ बैठने वाला अमुक व्यक्ति अमुक नाम वाले व्यक्ति के पास बैठ रहा हूँ और उससे बातचीत कर रहा हूँ। इस प्रकार की अनुभूति का होना चित्त निर्माण की प्रखर योग्यता का ही परिणाम था।

'महिमा' सिद्धि का उपयोग

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि भूतजय हो जाने के बाद योगी को अनायास ही अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाया करती हैं। जिसमें योगी अणुमात्र का चिन्तन करता हुआ अणु बन जाये तो समझ लेना चाहिए कि अणिमा सिद्धि हो गई। लघुत्व का चिन्तन करता हुआ यदि अपने अन्दर लघुत्व का स्पष्ट अनुभव करने लगे तो अपने आपको रूई की भाँति हल्का देखने लगे तो समझ लेना चाहिए कि यह अनुभव लघिमा सिद्धि का है। महिमा का चिन्तन करता हुआ योगी बृहदाकार हो जाता है। उसका संकल्प इतना तीव्र होता है कि वह चिन्तनमात्र से ही अपने को महान देखने लगता है।

सवाई के चरित्रों में उस विलक्षण घटना को प्रायः सभी लोग जानते हैं, जब कि बौहरे कर्णसिंह व श्री प्यारेलाल पटवारी ने श्री प्रभु जी से योग की कोई विशेष चमत्कृति दिखाने के लिए बार–बार हठपूर्वक आग्रह किया था। यद्यपि श्री प्रभु जी इस प्रकार की कोई बात नहीं चाहते थे किन्तु उन लोगों के लगातार आग्रह करने का यह परिणाम निकला कि श्री प्रभु जी हँस पड़े और मुस्कराकर बोले–अच्छा, तुम जो कुछ देखना चाहते हो देख लो। उन दोनों ने अपनी आँखों के सामने क्षणभर में ही श्री प्रभु जी को बृहदाकार रूप में देखा। जिसको देखकर वे लोग स्वयं को संभाल नहीं सके और घबराकर बेहोश हो गए एवं अचेतावस्था में भी अनेकानेक दृश्य देखते रहे। जिनका वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

यह योगेश्वर प्रभु श्रीरामलाल जी की महिमा सिद्धि का उत्कृष्ट प्रमाण है। इन सब बातों के लिए उनके मन में साधारण संस्कार का स्फुरण होना ही पर्याप्त होता था। ज्यों ही उनके मन में इस प्रकार का संकल्प होता त्यों ही साधकों को तत्काल अनुभूतियाँ हो जाया करती थीं।

संस्कारों का साक्षात्कार एवं भावी जन्म का ज्ञान

योगदर्शन बताता है–

संस्कार साक्षात्करणात्पूर्व जातिज्ञानम्।

संस्कारों के साक्षात्कार करने से योगी को पूर्वजाति का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है, पूर्वजाति में हम कौन थे? इसका ज्ञान योगी को अपने संयम के आधार पर हो जाया करता है और इसी प्रकार दूसरे के चित्त के संस्कारों का ज्ञान उसके अनुरक्त चित्त को साक्षात्कार कर लेने के बाद अवश्य ही हो जाया करता है। भगवान् पतंजलिदेव इस सम्बन्ध में बताते हैं–

प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम्।

व्यासभाष्य–

प्रत्यये संयमात्प्रत्ययस्य साक्षात्करणात्ततः परचित्तज्ञानम्।

प्रत्यय शब्द का अर्थ है–**'प्रतीयतेऽर्थोऽनेनेति प्रत्ययः।'** जिसका अवलम्ब लेकर अर्थ का ठीक-ठीक बोध हो जाए इसे प्रत्यय कहा जाता है। अर्थज्ञान का यही मूल कारण है। चित्त के अन्दर घूमने वाले संस्कारों में संयम करने से योगी को दूसरे के चित्त का भी यथार्थ ज्ञान हो जाया करता है। योग ही इस प्रकार के उत्कृष्ट ज्ञान की दात्री एकमात्र विद्या है।

एक बार मेरे गुरुभाई ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के मन में अपनी मृतात्मा माता की गति का ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा हुई। इसी उद्देश्य से वे ध्यान में बैठ गये। उस समय उनका चित्त एकाग्र था फिर भी अपनी माता की गति का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पा रहा था। अतः उन्होंने ध्यानावस्था में श्री प्रभुजी से प्रार्थना की–प्रभो! कृपा करके मेरी माता की गति का ज्ञान कराओ। श्री प्रभुजी ने थोड़ा सा संकेत किया और गोपालानन्द जी के मन को बल दिया। जिसके फलस्वरूप एक मछियारे की लड़की के रूप में उन्होंने अपनी माता को देखा। अपनी माता की इस प्रकार की निकृष्ट गति को देखकर श्रीब्रह्मचारी जी को बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की–हे प्रभो! इसकी कोख से मैंने जन्म लिया था, मेरी जन्मदात्री इस माता की यह गति क्यों हुई? श्री प्रभुजी ने ध्यान में ही आज्ञा दी कि तुम इसके मरणासन्न समय के संस्कारों को देखो यह उस समय क्या इच्छा कर रही थी।

श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार ब्रह्मचारी जी ने अपनी माता के मरणसमय के चित्त में संयम किया कि उसका चित्त मृत्युकाल में किन विषयों का चिन्तन करता हुआ देहत्याग कर रहा था। ब्रह्मचारी जी ने देखा कि उनकी माता मृत्यु के समय मछली के तेल का चिन्तन करती हुई शरीर को छोड़ रही है। यह देखकर ब्रह्मचारी जी के मन को भारी दुःख हुआ कि अन्तिम समय में उनकी माता ने मछली के तेल का स्मरण क्यों किया। ध्यान-समाधि से उठकर उन्होंने

अपनी बड़ी बहिन रुक्मणीदेवी से पूछा—बहिन! माता जी अन्तिम समय में किन भावों का स्मरण कर रही थी? बहिन ने बतलाया कि माताजी के पेट में अफारा हो गया था। डॉक्टर ने उसे मछली का तेल पिलाने की सलाह दी थी। हम लोगों ने यह प्रयत्न भी किया कि किसी भी प्रकार उनकी जिन्दगी बच जाये तो अच्छा है। बाद में शुद्धि कर लेंगे। एक बार उनको मछली का तेल ही पिला दें। हमने मछली का तेल लाने के लिए एक आदमी बाजार भेजा। उसके लौटकर आने से पहले ही माताजी ने शरीर त्याग दिया। संभव है उनके मन में मछली के तेल के संस्कार मृत्युकाल में रहे हों। ब्रह्मचारी जी ने स्पष्ट रूप से समझ लिया—**'अन्तमती सो गती।'**

जगदात्मा श्रीकृष्ण ने गीता के 8वें अध्याय में इसी भाव को बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजन्त्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

अर्थात् अन्तिम समय में जो मेरा स्मरण करता हुआ देह-त्याग करता है वह निस्सन्देह मुझ परमात्मा को ही प्राप्त हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति मृत्युकाल में जिन भावों का स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है तद्भाव भावित होकर वह वैसी ही गति को प्राप्त हो जाया करता है।

इस प्रकार श्री प्रभुजी ने अपनी शक्ति देकर ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी को संस्कार साक्षात्कार करने की योग्यता वाला बनाया। उनके अलौकिक चरित्रों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ? ये सब घटनायें अब भी उसी प्रकार घटित होती रहा करती हैं जैसी उनके उपस्थितिकाल में होती थी। उनका स्थान-स्थान पर प्रकट होना, वरदान देना व अपने जिज्ञासु भक्तों की सहायता करना नित्य का कार्य है। उनका प्रत्येक क्रियाकलाप एवं पवित्र योगोपदेश आज भी उसी प्रकार मनुष्यों के कल्याण का पथ प्रशस्त कर रहा है।

सम्पादकीय–

परम गुरुदेव श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

–योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

ईश्वर सर्वव्यापक और अनादि है। वह सृष्टि का सर्वप्रथम गुरु है। योग दर्शन में पतञ्जलिदेव जी महाराज ने **'स: पूर्वेषामपि गुरु: कालेनान वच्छेदात्'** कहकर ईश्वर को सृष्टि का प्रथम गुरु कहा है। तीनों काल में विद्यमान रहने के कारण उनकी सत्ता अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहती है। वही ईश्वर समय–समय पर सगुण रूप में आकर प्रकट होते हैं और भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का संहार करते हैं–जैसा कि भगवान ने गीता के चौथे अध्याय में घोषणा की है। योग रूपी धर्म की स्थापना समय–समय पर प्रकट होकर करते रहते हैं। ईश्वर की भांति महायोगियों का चरित्र भी अलौकिक होता है, उनके चरित्र व इतिहास को जानना असंभव होता है। ऐसे योगी किसी भी स्थान पर, किसी भी समय प्रकट होकर अपना अभीष्ट कार्य किया करते हैं। उनका जन्म और कर्म मानुषी बुद्धि के द्वारा नहीं समझा जा सकता है। वे ईश्वर के तुल्य ही होते हैं। ऐसे ही एक महायोगी हुए हैं जो सृष्टि के अन्त तक हिमालय में अजर–अमर रहकर वास करते हैं तथा योग विधि से काय–निर्माण कर पृथ्वी पर आते रहते हैं जिनका परम पावन नाम महाप्रभु रामलाल है। वे एक ही समय में अनेक स्थानों पर काय–निर्माण से शरीर बनाकर योग विद्या के प्रचार–प्रसार के लिए प्रकट होते रहते हैं। ऐसे योगियों के काय–निर्माण से कार्य करने की बात उपनिषदों में वर्णित है।

''अचिन्त्य शक्तिमान योगी नाना रूपाणिधार येत्।'' अचिन्त्य शक्तियों से सम्पन्न योगी नाना रूपों तथा नाना नामों से रहकर अपना अभीष्ट कार्य करते रहते हैं। ऐसे योगी अपने भक्तों के अविद्यादि क्लेश रूप दुःख द्वन्द्वों को मिटा देते हैं। योग ध्यान की विधि द्वारा भक्तों को पूर्णतया योग मार्ग में लगाने के लिए तीव्र शक्तिपात कर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर योग के गूढ़ रहस्यों को प्रकट कर उच्च भूमिकाओं में प्रवेश करा देते हैं। सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि का बोध करा देते हैं।

आनन्दकन्द प्रभुजी बीसवीं सदी के सिद्ध योगियों में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। जन्म से ही उनकी योग शक्तियों का परिचय जन सामान्य को मिलने लगा था। मध्य युग में नाथ योगियों के चमत्कारिक विभूतियों से लोगों में योग विद्या के प्रति विश्वास एवं आकर्षण हो गया था। इस

से धर्म एवं आध्यात्म के दिव्य ज्ञान का प्रचार किया गया। महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ शिवा योगी गोरक्ष नाथ, भर्तृहरि, गोपीचन्द एवं चौरासी सिद्धों के दिव्य चमत्कारों की गाथा भारत में फैली हुई है। वस्तुतः योग ही शाश्वत् जीवन की प्राप्ति का मार्ग है। इसी से जीव अखण्ड शान्ति तथा जन्म मरण के क्रम को तोड़ सकता है।

श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने दिव्य शक्तिपात के द्वारा साधकों को योग की ऊँची-ऊँची भूमिकायें प्रदान की हैं वहीं पर जन सामान्य के स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए दिव्य क्रियाओं को अपने मन से आविष्कार करके जीवन तत्व साधन के नाम से क्रियाओं का प्रचार-प्रसार जन सामान्य में किया है। ये क्रियायें स्वास्थ्य के साथ-साथ नाड़ी शोधन द्वारा मन की एकाग्रता को भी प्रदान करने वाले हैं जिसे हर व्यक्ति कर सकता है यहाँ तक रोगी व्यक्ति भी उनका अभ्यास करके धीरे-धीरे पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। रोगों की निवृत्ति के लिये ये रामबाण हैं। कालान्तर में रोगी भी योग ध्यान में प्रवृत्त हो जाया करते हैं। भारतभूमि में शक्तिपात द्वारा योग विद्या को आगे बढ़ाने वाली संस्थायें बहुत ही कम हैं। पूर्ण योगीराज सिद्ध ही शक्तिपात का सामर्थ्य रखता है।

महाप्रभु रामलाल जी महाराज कल्पान्त जीवी अजर अमर सिद्ध हैं। योग पृथ्वी से लुप्त प्रायः होता देखकर बीसवीं शताब्दी में योग विद्या के अनेक रूपों से योग का प्रचार किया है। वे योग के साक्षात् स्वरूप हैं। उनके श्वास-श्वास में योग की विभूतियाँ प्रकट होती हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। ''**कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्**'' की शक्ति वाले हैं। अर्थात् अपनी इच्छा से ही किसी वस्तु का निर्माण कर लें, क्षण में किसी को सिद्ध बना दें तथा उनके विपरीत चलने पर नीचे गिरा दें यह सब सामर्थ्य उनमें विद्यमान हैं। सिद्धों की इच्छा के अनुरूप ही प्रकृति चलती है। पातञ्जल दर्शन में योग विभूतियों पर भाष्य लिखते हुए भगवान् व्यास देव जी लिखते हैं कि योग सिद्ध योगियों की इच्छा के अनुसार प्रकृति उसी प्रकार से चलती है जिस प्रकार से सद्यः प्रसूत गौ अपने बछड़े के पीछे-पीछे चला करती है। श्री महाप्रभु जी ने कुछ दिन श्री सिद्ध गुफा में रहकर उस भूमि को पवित्र किया और उसे योग का हृदय बनाकर गये। इसकी रज योग विभूतियों से ओत-प्रोत है। सिद्ध पुरुष ही ऐसे योगियों के विषय में जान पाते हैं साधारण मनुष्य नहीं। उनके शिष्यों की लम्बी शृंखला में देवरहा बाबा प्रभृति अनेक सिद्ध हैं जो हिमालय की कन्दराओं में अजर अमर हैं। श्री योगी हरीहरानन्द जी महाराज को श्री प्रभु जी ने एक क्षण में तत्त्व विजयी सिद्ध बना दिया जो आज भी शीशगिरी पहाड़ी पर समाधिस्थ हैं, ऐसा हमारे गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी हमें अपने श्री मुख से बतलाया करते थे।

श्री सिद्ध गुफा से ही अनुप्राणित होकर सैकड़ों योग शाखायें देश-विदेश में चल रही हैं। हमारे गुरुदेव योगिराज जी ने अपने शिष्यों के मन में श्री प्रभु जी की अप्रतिम योग प्रभाव को

स्थापित किया है इसी कारण से उनके शिष्य प्रभुजी को सदाशिव स्वरूप मान कर उनकी पूजा व ध्यान करते हैं तथा सफल मनोरथ होते हैं।

आपका अवतरण पंजाब प्रान्त के अमृतसर शहर में स्वनाम धन्य ज्योतिर्विद पं. गण्डाराम जी के घर में सन् 1888 में श्री राम नवमी के पावन पर्व में हुआ। श्री माता जी का नाम भागवन्ती देवी हुआ। आप के जन्म कुण्डली को देखकर ही आप के महायोगी होने का प्रमाण मिल गया था। आप के पूर्वज भी बहुत शक्ति सम्पन्न महापुरुष हो चुके हैं जो अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्वलित कर देना, वर्षा करा देना आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी दिव्य कुल में प्रभुजी का अवतरण हुआ था। शैशवावस्था में ही आपके कार्य बड़े अलौकिक थे। चौदह वर्ष की आयु में ही विद्याध्ययन के बहाने से घर से निकल पड़े थे। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे। विद्याध्ययन के समय ही आपके कई चमत्कार विद्यार्थियों ने देखे।

एक दिन दोपहर विश्राम के समय आप विश्राम कर रहे थे तभी एक नाग इनके सिर पर छाया किये खड़ा था। कुछ देर बाद स्वतः ही गायब हो गया। वहाँ से आप काशी जी चले गये। उस समय में बहुत से तांत्रिक मान्त्रिकों से आप की टक्कर हुई। आपने सभी की शक्तियों को परास्त किया और कुरीतियों तथा व्यभिचार के केन्द्रों को नष्ट किया। सभी आप की यौगिक शक्तियों के सामने नतमस्तक हुए। कुछ वर्षों बाद आप श्री धाम वृन्दावन की ओर चले आये तथा घूमते-घूमते बरहन गाँव के लोगों पर कृपा बरसाते हुए संवाई गाँव पहुँच गये। यहाँ प्यारे लाल आदि आप के परम भक्त बन गये। आप के मुख से निकली वाणी अक्षरशः सत्य होती थी। आपके दिव्य सानिध्य को पाकर सभी कृतकृत्य हो गये। आप के निर्विघ्न समाधि की स्थिति के लिए उचित जगह के लिए ग्राम वासियों ने गुफा बना दी। वहाँ कुछ वर्ष श्री प्रभुजी रहे तत्पश्चात् एक दिन चुपके से प्रातःकाल ही गुफा के बन्द द्वार से अणिमा सिद्धि से निकल कर आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चले गये। वहाँ नेपाल में अपने गुरुदेव श्री महाप्रभु सदाशिव के निकट कई वर्ष रहने के बाद उनकी आज्ञा से ही योग विद्या के प्रसार के लिए पुनः मैदानों में आ गये। आपने संस्कारी भक्तों को योग मार्ग का उपदेश दिया। अपने भक्तों के आध्यात्मिक उन्नति के लिए जीवन तत्त्व की साधना के उपयोगी क्रियाओं का अन्वेषण करके भक्तों के मध्य प्रकाशित किया। अमर तत्त्व, फल तत्त्व आदि विशेष साधनों का प्रचार किया। इन क्रियाओं द्वारा जठराग्नि दीप्ति के साथ-साथ कुण्डलिनी जागरण के लिए शक्ति संचार का प्राचीन यौगिक आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण बनाया। आपने कई सिद्धयोगी बनाये जिसमें ब्र. गोपालानन्द जी महाराज, श्री योगी मुल्खराज जी महाराज, गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री योगी नृसिंह मूर्ति जी, माता द्रोपदी देवी एवं ऋषिदेवी जी प्रमुख हुये। इन महान योगियों ने अध्यात्म योग व ध्यान योग का उपदेश अपने शिष्यों को दिया। सबसे अधिक प्रचार करने

वालों में गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन श्री महाराज का नाम सर्वोपरि आता है। आप सच्चे अर्थों में श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ योगी हुए जिनके लाखों शिष्य ध्यानयोग में दीक्षित होकर आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं। सदेह न होने पर आज भी अपने साधकों का अज्ञान तिमिर दूर कर रहे हैं। श्री प्रभु जी की परम्परा के साधक भ्रमित नहीं रहते हैं। योग के वास्तविक स्वरूप को जानने वाले होते हैं। योग में तर्क व विवाद का कोई स्थान नहीं है। ध्यान जन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा व विवेक ख्याति ही जन्म मरण के चक्र को छुड़ा देने वाली होती है। 'सिद्धयोग' की परम्परा में यद्यपि सिद्धगुरुदेव सब कुछ स्वयं करने वाले होते हैं तथापि निमित्त मात्र से क्रिया योग की साधना का निरन्तर अभ्यास करते रहने की आज्ञा हमारे सद्गुरुदेव योगिराज जी की आज्ञा रही है। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष व कामधेनु के समान हैं सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। साधक को चाहिए शुद्ध व निर्मल भाव से साधनारत रहे। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के हृदय कमल पर सदा विराजमान रहते हैं। श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम इस वर्ष श्री राम नवमी पर्व योग महामेला के रूप में **23, 24 व 25** को धूमधाम से मनाया जा रहा है। उनके प्राकट्य दिवस के पावन अवसर पर उनके चरण–कमलों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

सच्चा बुद्धिमान् तो वह है, जो इस रहस्य को समझ लेता है और सारे जगत् की उत्पत्ति का कारण तथा जगत् की सारी प्रवृत्तियों का हेतु एकमात्र श्री भगवान् को मानकर, भावपूर्ण हृदय से भगवान् को भजता है।

॥ ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्या

डॉ. विजय सिंह

सम्प्रज्ञात ज्योति जिन भाग्यवानों के हृदय में सद्गुरु कृपा से प्रकाशित है, वे ही जगदात्मा भगवान कृष्ण के परम सौंदर्य के दर्शन से मद मस्त हुये उनके लीलाओं का अल्पांश अनुभव करते हैं। हमारे गुरुभाई-बहनों को अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण के अनुभव श्रीसद्गुरु कृपा से होते रहते हैं। एक भाई ने कभी अपने ऐसे दिव्य अनुभव मुझे भाव विह्वल शब्दों में सुनाये थे। वे कहने लगे साक्षात् श्रीकृष्ण जी के तेज को सहन करने का सामर्थ्य तो ब्रह्मा, नारदादि में भी नहीं है। एक बार ध्यान दृष्टि में सद्गुरु भगवान के दर्शन हुये। परिदृष्य में एक मंदिर था। भावित् भक्त ने पूछा प्रभो! यह किसका मंदिर है। इसमें कौन देव विराजते हैं। श्रीप्रभु ने कहा इस समय पट बंद है। तूँ उनके दर्शन करना चाहता है। स्वीकार भाव जताने पर श्री प्रभु कृपा से पट अवरोध दृष्टि से ओझल हो गया और एक मनोहारी श्यामल भीमंगी मुद्रा में पीताम्बर धारी भगवान श्री कृष्ण के दर्शन हुये। मैंने पूछा क्या सजीव साक्षात् श्री कृष्ध के दर्शन हुये थे। वह हँस कर बोले ज्योंही मैं उस विग्रह के मुख मण्डल को देखने की इच्छा की आँखें उनके मुकुट में जड़ित एक मणि से निकल रही स्निग्ध रश्मी पर पड़ी। वह रश्मि मन बुद्धि को चकित, स्तम्भित करता हुआ प्रतीत हुआ और स्वयं की अस्मिता कहीं खो गयी। भला सोचो स्वयं साक्षात् श्री कृष्ण में कैसी अनन्त अपार आकर्षण रहा होगा। भाई! इसीलिये सद्गुरु भगवान श्री महाप्रभुजी के कथन को उदधृत करके कहा करते थे कि – श्रीकृष्ण समान योगी न भूत में हुआ, न वर्तमान में है और न भविष्यत में होगा। वे परिपूर्ण ब्रह्म है।

श्री द्रौपती माता को महाप्रभु जी की कृपा से साक्षात् बाल श्री कृष्ण के दर्शन, उन्हें भोग आरोगने की कथा सिद्धयोग के सुधी विज्ञ पाठकों को पता है ही। अनेक स्त्री-पुरुष सद्गुरु संग के प्रभाव से , श्री कृष्ण लीलायें अपने मनो राज्य में, सम्प्रज्ञात ज्योति में, घण्टों समाहित रह कर देखा करते हैं, और अपने भावों में भक्ति का सत् धारण कर जीवन चरितार्थ करते आये हैं।

यह सब भूमिका इस लेख में देने का कारण यह है कि नवम स्कन्ध समाप्त हुआ। अब दसम् स्कन्ध के पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध में भाव-योग, प्रेम-योग, विशुद्ध-योग का ही वर्णन इस कलिकाल में दूषित मन वालों को शीघ्र पवित्र करने का एक मात्र साधन है। अतः अब उन परात्पर की कृपालीलाओं का वर्णन आद्योपान्त पठन-चिन्तन करना-कराना ही लेख का

प्रयोजन है।

श्री शुक्रदेव जी परीक्षित को जो अन्न–जल त्याग कर भागवत् कथा में तल्लीन थे, अब भगवान के अवतार के पूर्व पृथ्वी पर दैत्य, असुरादि राजाओं के रूप में जन्म लेकर अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी का देवताओं के साथ ब्रह्मा जी के पास जाने की कथा सुनाते हैं। श्री ब्रह्माजी, शंकर जी तथा सभी देवताओं सहित पृथ्वी को लेकर क्षीरतट पर आकर बड़ा मार्मिक–तात्विक प्रार्थना "पुरुषसुक्त" के द्वारा किया। स्तुति करते–करते ब्रह्मा जी समाधिस्थ हो गये–

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम्।
पुरुषं पुरुषसूत्रेन उपतस्थे समाहितः।। 20।।

(अ. 1 दशम स्कन्ध)

उन्होंने समाधि अवस्था में आकाशवाणी सुनी। ब्रह्माजी ने आकाशवाणी के अनुसार देवताओं से कहा– मैंने अभी भगवान की वाणी सुनी है अब तुम लोग मेरे द्वारा वह सुन लो–

गिरं समाधौ गगने समीरितां
निशम्य वेधा स्त्रिदशानुवाच ह।
गां पौरुषीं मे श्रृणुतामराः पुन–
र्विधियतामाशु तथैव मा चिरम ।। 21।।

(अ.1 स्क.10)

भगवान अपनी काल शक्ति के द्वारा पृथ्वी का भार हरण करने हेतु पृथ्वी पर जन्म लेंगे, तब तक तुम सभी अपने–अपने अंशों के साथ यदुकुल में जन्म लेकर उनकी लीला में सहयोग दो। वसुदेव जी के घर स्वयं पुरुषोत्तम भगवान देवकी के गर्भ से प्रकट होंगे। उनकी एवं उनकी प्रियतमा (श्रीराधा जी) की सेवा के लिये देवाङ्गनायें जन्म ग्रहण करें। स्वयं प्रकाश भगवान शेष भगवान का प्रिय कार्य करने के लिये बड़े भाई के रूप में अवतार लेंगे। भगवान की ऐश्वर्य शालिनी माया भी अंशरूप में अवतरित होगी।

श्री शुकदेव जी ने कहा– परीक्षित ! उस काल में यदुवंशी राजा शूरसेन थे। वे मथुरा मण्डल और सूरसेन–मण्डल का राज्य शासन मथुरापुरी में रहकर करते थे। एक बार शूर के पुत्र वसुदेव जी विवाह करके अपनी पत्नी देवकी के साथ घर जाने के लिये रथ पर सवार हुये। उग्रसेन का लड़का कंस अपनी चचेरी बहन के रथ को स्वंय हाँकने लगा। मार्ग में कंस को आकाशवाणी ने सम्बोधन करके कहा – 'अरे मूर्ख ! जिसको रथ में बैठाकर तू ले जा रहा है, उसकी आठवें गर्भ की सन्तान तुझे मार डालेगी।

इतना सुनते ही क्रूर कंस तलवार निकाल देवकी का बध करने को उद्यत हुआ। महात्मा वसुदेव जी के समझाने और वचन देने पर कि जो भी देवकी से संतान होगा उसे तुम्हें दे देंगे। कंस जानता था कि वसुदेव जी के वचन झूठे नहीं होते। इसलिये उसने देवकी को मारने का

विचार छोड़ दिया।

सत्य सन्ध पुरुष बड़े–से–बड़ा कष्ट सहते हुये दिये वचन के लिये सब कुछ त्याग सकते है। वसुदेव जी एक–एक करके कंस के पास अपने छः पुत्रों को लाये और क्रूर कंस ने उन सब का बध किया। श्री नारद जी द्वारा कंस को सूचित किये जाने पर कि तुम्हारे बध की तैयारी देवताओं द्वारा रची गयी है। कंस ने वसुदेव एवं देवकी जी को कारागार में डाल दिया। कंस जानता था कि मैं पहले जन्म में कालनेमि असुर था मुझे विष्णु ने मार डाला था। इससे उसने यदुवंशियों से घोर विरोध ठान लिया। अपने पिता राजा उग्रसेन को कैद कर लिया और स्वयं राजा बन बैठा। दशम स्कन्ध पूर्वार्ध के दूसरे अध्याय में भगवान का देवकी के गर्भ में आना और देवताओं द्वारा गर्भ–स्तुति का वर्णन किया गया है। जब आनन्दस्वरूप शेषजी देवकी के गर्भ में आये तो इस भय से कि कंस इसे भी मार देगा, यह सोच कर शोकाकुल हो उठीं। विश्वआत्मा भगवान ने देखा यदुवंशी कंस के द्वारा बहुत सताये जा रहे हैं, तब उन्होंने अपनी योगमाया को यह आदेश दिया।

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम्।
यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत्।। 6।।

(अ.2 स्क.10 पूर्वा.)

कल्याणी इस समय शेष जी देवकी के उदर में गर्भ रूप हैं, उसे वहाँ से निकालकर तुम रोहणी के पेट में रख दो।

भय बुद्धि की हार है

भय हमारी बुद्धि की हार है, हमारे आत्मविश्वास की हार है। मनुष्य सृष्टि का श्रृंगार है, किन्तु मनुष्य तो सृष्टि की निकृष्टतम वस्तु है। भय एक मिथ्या, काल्पनिक भ्रम है। आत्मविश्वास में अनन्त शक्ति है। यह आपको ऊँचे शिखर पर ले जा सकती है। आत्मविश्वास को जगाना शुरू करें और कुछ ही समय में आप में परिवर्तन आ जाएगा। आत्म–विश्वास आस्तिकता का प्रथम चरण है, आत्मविश्वास का अभाव नास्तिकता का प्रारम्भ है, " हाँ, हाँ मैं क्या नहीं कर सकता ? मैं अवश्य कर सकता हूँ और सफल हो सकता हूँ। मैंने बड़े–बड़े काम किये हैं, आगे भी कर दूँगा। प्रभु ने मेरा हाथ पकड़ रखा है, प्रभु कृपा मेरे साथ है। " भय की सीमा नहीं होती है, कहाँ तक भय मानें।

॥ ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

तत्व विजयी भव

जगदीश राय बंसल ''अधम्''– 9212434003

श्री प्रयागराज महा कुम्भ के चलते अपने प्रवचन में सद्गुरु देव योगयोगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी महाराज ने जन कल्याणार्थ अपने श्री मुख से योग वर्षा करते हुए साधकों को सावधान किया कि देखो लल्ला साधक ही योगी बन सकता है और योगी ही तत्व विजयी बन सकता है। योगी का दर्जा तपस्वियों से, कर्म काण्डियों से, और ज्ञानियों से श्रेष्ठ होता है। वेद में, यज्ञ में और दान में जो पुण्य अर्जित किया जाता है, योगी उन सब को लांघ जाता है। अतः अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण ने महाभारत के समय कुरुक्षेत्र में महात्मा अर्जुन को आज्ञा दी कि :–

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्य श्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

देखो–योग दो प्रकार के होते है (1) साधन योग और (2) सिद्धयोग। साधनयोग का अभ्यासी साधक धीरे–धीरे लक्ष्य को प्राप्त करता है और सिद्धयोग का साधक सिद्धगुरु द्वारा कमाई कमुई अनमोल निधि को पा कर एक दम समाधि को प्राप्त हो जाता है। सिद्ध महात्मा जहाँ जिस पर अपनी कृपा कर देते हैं, चाहे वह साधक अभिमानी, क्रोधी अथवा दुष्ट प्रकृति का ही क्यों न हो, उस पर जैसे ही शक्तिपात हुआ, वह तुरन्त समाधि को प्राप्त हो जाता है। शक्ति पात करने के पश्चात यह देखना होता है कि वह अधिकारी भी है या नहीं ? हम जानते हैं कि शेरनी का दूध तो सोने के पात्र में ही ठहरता है। उसी प्रकार गुरु कृपा तो हो जाती है किन्तु उसका फलीभूत होना साधक ही योग्यता पर निर्भर करता है।

उदाहरण के तौर पर मैंने अपने बड़े गुरुभाई श्री हरिहरानन्द की चर्चा कई बार की है। भाई हरीहरानन्द बलिया जिले के एक गांव बसन्त पुर में रहने वाले उस लड़के का नाम था हरिराम। एक बार श्री प्रभु जी बसन्त पुर उसके गांव गए हुए थे उन्होंने देखा कि एक हट्टा–कट्टा लड़का एक औरत को बेधड़क पीट रहा था। श्री प्रभुजी ने कहा, यह ठीक नहीं कर रहा। वहाँ बैठे आदमी बोले कि महात्मा जी यह ठीक कर रहा है। अगर यह लड़का इस औरत को मार भी दे, तो भी ठीक ही है। यह स्त्री चरित्र हीन है। गांव की बहू–बेटियों को बहला फुसला कर बदचलनी में ढकेलती है। और रिश्वत खाती है.....।

श्री प्रभुजी ने उस लड़के (हरीराम) को बुलवाया और पूछा, तुम कौन हो? वह बोला, मैं ब्राह्मण हूँ। श्री प्रभु जी बोले ब्राह्मण का काम पढ़ना और दान लेना है। क्या तुम लेना ही जानते हो या देना भी ? वह लड़का बोला, महात्मन–आज तक लिया नहीं है, मगर दे सकता हूँ। श्री प्रभु जी बोले, दे सकता है तो अपना सिर दे दो। वह बोला महाराज दो दिन की इजाजत दे दो......। दो दिन में उसने अपनी तमाम सम्पत्ति दान कर दी। और तलवार सहित हाजिर हो कर बोला – लो महाराज, आप मेरा सिर काट लो। श्री प्रभु जी बोले, एकान्त में चलो–वहाँ ले लूंगा। वह एक नहर पर ले गया। वहाँ जा कर श्री प्रभु जी बोले– हम तो सिर काटेंगे नहीं–हमको ब्रह्म हत्या लग जाएगी। तू अपने आप सिर काट दे, हम उठा लेंगे। हरीराम ने जैसे ही जोर से तलवार घुमाई, तैसे ही प्रभु जी ने उसका हाथ पकड़ लिया, और तलवार तोड़ डाली–हरीराम को अपने कण्ठ से लगा लिया। बोले – बेटा तू आज से अजर अमर है। लाखों में एक है। हम अभी से शक्तिपात करते हैं और हार्द दीक्षा देते हैं–अब से तुम हरीहरानन्द के नाम से जाने जाओगे। **गुरुदेव ने एक बार कहा था** – ''हम भी एक बार उसके गांव बसन्त पुर गए थे। हमने गांव के लोगों से बातें की थी। लोगों ने कहा हरीराम को कोई महात्मा ले गया था, वह पुनः नहीं आया। हम वो नहर भी देख कर आए थे। बातें तो हरीहरानन्द की बहुत सारी हैं, मगर यहाँ कहने का मतलब यह है कि श्री हरीहरानन्द शक्तिपात पा कर इस समय शीशा गिरी पहाड़ी पर तीन महिनों में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभु जी ने उन्हें तीव्र तम शक्ति पात करके भूत जयी सिद्ध बना कर वहाँ बैठा दिया। इसी का नाम सिद्धयोग है। हरीहरानन्द जी ने विभेदन किया हुआ है। वे अजर–अमर हैं। श्री प्रभु जी ने उन्हें **तत्व विजयी** सिद्ध होने का वरदान दे कर अजर अमर बनाया हुआ है।

हमने एक बार अपने बच्चे रघुनन्दन प्रसाद टाट बाबा को शीशा गिरी पहाड़ी पर हरीहरानन्द का पता लगाने के लिए भेजा था। उसने लौट कर हमें संवाई में बतलाया था कि मैं शीशा गिरी पहाड़ी पर पहुँच तो गया था, किन्तु वहाँ पर विषैली हवाओं के चलते उन तक नहीं पहुँच सका। मेरा शरीर फटने लगा–खून बहने लगा, अतः लौट आया हूँ। किन्तु वहाँ पर महात्माओं से यह तो पता लगा लिया था कि उस विषैली दुर्गम पहाड़ी पर एक गुफा में श्री हरीहरानन्द जी रहते हैं और वह तीन माह में एक बार उठा करते हैं। उस गुफा के द्वार पर एक भारी भरकम पत्थर लगा है जो उसी (हरीहरानन्द) से हटता है। देखो तत्व विजयी महा सिद्ध महात्मा अपने शरीर को हजारों, लाखों वर्ष तक यथावत रख सकते हैं। ऐसे सिद्धों के दर्शन अपने तप से, अपनी कमाई से होते हैं।

तुम सब भी यहाँ कुछ कमाने आए हो। यह तीर्थ क्षेत्र है, उसमें भी कुम्भ का शुभ अवसर है जो कल्याणकारी योग होता है। तुमने नियम से अपने गुरुमंत्र का जाप किया होगा तो श्री प्रभु जी की कृपा, सिद्धों की कृपा, देवताओं की कृपा व तीर्थ लाभ अवश्य–अवश्य मिलेगा। यदि

तुम लोग जन्म मृत्यु से बचना चाहते हो तो दो घण्टे प्रातः काल पांच बजे से सात बजे तक अपने गुरुमंत्र का नियमित जाप करो। अपने जीवन के अन्दर सतोगुण को चमका लो। अपने पुण्यों के भण्डार भर लो, फिर किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा। जब तुम्हारा स्वाध्याय बढ़ जाएगा तब तुम सिद्धों के दर्शन के अधिकारी बन जाओगे और अन्त में परम पद को अवश्य ही पा जाओगे। अस्तु। बार–बार आशीर्वाद।

शोक संवेदना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त दुःख हो रहा है कि आदरणीय उमा बहिन जी का 28 फरवरी को शाम चार बजे देहावसान हो गया है। वे एक डेढ़ माह से रूग्ण चल रही थीं। उनके निधन से आश्रम ने एक कर्मठ एवं समर्पित साधिका को खो दिया है जिसकी पूर्ति कठिन है। आश्रम को उन्होंने निर्माण कार्यों में बहुत योगदान दिया है। पूरा जीवन उनका आश्रम के प्रति समर्पित रहा है। आनन्दकन्द गुरुदेव के योग प्रचार के कार्यक्रमों में अन्य ब्रह्मचारी साधकों के साथ उनका सहयोग अविस्मरणीय रहेगा। अपने जीवन के पचास वर्ष उन्होंने इस आश्रम की सेवा में लगा दिये। उनका अन्तिम संस्कार हरिद्वार में नील धारा के पास 1 मार्च 2018 को किया गया तथा द्वादशाह 12 मार्च को किया गया।

इस दुःख की बेला में आश्रम के समस्त साधक अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करते हैं तथा दुःख से दुःखी भक्तों को इस दुःख के समय में धैर्यपूर्वक अपनी साधना को बढ़ाते रहने की कामना करते हैं।

''जातस्य हि ध्रुवोमृत्युः, ध्रुवम् जन्म मृतस्य च''

जो पृथ्वी पर आया है मृत्यु भी उसकी निश्चित है और जो चला गया है उसका जन्म भी निश्चित है। भगवान के इस वचन का स्मरण करके धैर्यपूर्वक गुरु चरणों में अपनी वृत्ति को लगाये रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

शोकाकुल

आश्रमवासी भक्तगण

श्री सिद्ध गुफा संवाई

एत्मादपुर, आगरा।

समर्थ श्री रामदास की वाणी–

परमात्मा की पहचान और उसकी प्राप्ति

यदि हमें किसी गाँव या देश में रहना हो और हम वहाँ के स्वामी से न मिलें तो कैसे सुखी हो सकते है ? इसलिए जिसे जहाँ रहना हो, यदि वह वहाँ के स्वामी से भेंट कर ले तो उसके लिए सब प्रकार से अच्छा ही होता है। यदि प्रभु से भेंट न की जाए तो उसके वहाँ मान नहीं होता और अपना महत्व या प्रतिष्ठा नष्ट होने में देर नहीं लगती। इसलिए राजा से लेकर रंक तक को प्रभु से भेंट करनी चाहिए और विवेकी लोग इसका रहस्य अच्छी तरह जानते हैं। यदि बिना प्रभु से भेंट किये कोई उसके नगर में रहे तो वह बेगार में पकड़ा जायेगा और चोरी न करने पर भी चोरी में पकड़ा जायगा। इसलिए जो लोग समझदार होते हैं, वे प्रभु से अवश्य भेंट करते है; और जो लोग भेंट नहीं करते, उन्हें संसार में अनेक प्रकार के संकट भोगने पड़ते हैं। गाँव में वहाँ का अधिपति बड़ा होता है; उससे बड़ा देश का अधिपति और उससे भी बड़ा नृपति होता है। राष्ट्रों का प्रभु राजा होता है; बहुत से राष्ट्रों का पति महाराजा होता है और महाराजाओं का भी राजा चक्रवर्ती होता है। नरपति, गजपति, हयपति और भूपति सबमें चक्रवर्ती राजा बड़ा होता है। इन सबको बनाने वाला एक ब्रह्मा होता है; पर उस ब्रह्मा को बनाने वाला कौन है? जो ब्रह्मा, विष्णु और हरि को भी बनाने वाला है, उस परमेश्वर को अनेक प्रकार से यत्न करके पहचानना चाहिए। जब तक उस ईश्वर की प्राप्ति न हो, तब तक यम–यातना से छुटकारा नहीं मिलता और ब्रह्मांड–नायक से भेंट न होना अच्छा नहीं होता। जिस ईश्वर ने मनुष्य को संसार में भेजा है और सारे ब्रह्मांड की सृष्टि की है, उसे न पहचानने वाला पतित है। इसलिए ईश्वर को पहचानकर जन्म सार्थक करना चाहिए; और यदि उसका ज्ञान न हो सके तो सत्संग करना चाहिए, क्योंकि इससे उसका पता अवश्य लगता है। भगवान को जानने वाला ही सन्त कहलाता है और वही शाश्वत तथा अशाश्वत का निर्णय करता है।

जिसने मन में समझ लिया है कि ईश्वर अचल है, उसी को महानुभाव, सन्त तथा साधु समझना चाहिए। जो मनुष्यों में रहकर लोगों से भिन्न अर्थात् अलौकिक बातें बतलाता

हो और जिसके हृदय में ज्ञान की जाग्रति हुई हो, वही साधु है। परमात्मा को निर्गुण समझना ही ज्ञान है और इससे भिन्न सब कुछ अज्ञान है। पेट भरने के लिए जो अनेक विद्याएँ सीखी जाती हैं, उन्हें लोग ज्ञान कहते हैं, पर वे सार्थक नहीं हैं। जिस ज्ञान से ईश्वर पहचाना जाए, वही सार्थक है; बाकी निरर्थक और पेट भरने की विद्याएँ हैं। जन्म भर अपना पेट भरा और शरीर की रक्षा की, पर अन्त में यह सब व्यर्थ हो जाता है। पेट भरने की विद्याएँ को सद्विद्या नहीं कहना चाहिए। जिससे उस सर्वव्यापक वस्तु की तत्काल प्राप्ति हो वही ज्ञान है। जिसके पास इस प्रकार का ज्ञान हो, उसी को सज्जन समझना चाहिए और उसी से अपना समाधान करने के लिए प्रश्न करना चाहिए। यदि अज्ञानी के साथ अज्ञानी की भेंट हो तो ज्ञान कैसे मिल सकता है ? दरिद्र के पास जाने से धन कैसे मिल सकता है? यदि रोगी के पास रोगी जाय तो वह आरोग्य कैसे हो सकता है ? और निर्बल के पास निर्बल जाए तो उसे सहायता कैसे मिल सकती है ?

यदि पिशाच के पास पिशाच जाए तो क्या काम निकल सकता है; और उन्मत्त से उन्मत्त मिले तो वह उसे क्या समझ सकता है? भिखारी से भीख कैसे मिल सकती है और दीक्षाहीन से दीक्षा कैसे मिल सकती है? कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का प्रकाश ढूँढने से कैसे मिल सकता है? यदि मूर्ख के पास मूर्ख जाए तो वह समझदार कैसे हो सकता है? और बद्ध पुरुष बद्ध पुरुष पर जाए तो वह सिद्ध कैसे हो सकता है? यदि देही के पास देही जाए तो विदेह कैसे हो सकता है? इसलिए जो स्वयं ज्ञाता न हो, वह ज्ञानमार्ग नहीं बतला सकता। इसीलिए ज्ञाता को ढूँढना चाहिए, उसका अनुग्रह प्राप्त करना चाहिए और उसके सारासार की बातें जाननी चाहिए; तभी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

अब उस उपदेश के लक्षण सुनिए जिससे सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है। अनेक प्रकार के दूसरे मतों की खोज करना व्यर्थ है। जिस उपदेश में ब्रह्मज्ञान न हो, उसमें कोई विशेषता नहीं है। ऐसा ज्ञान उस भूसी के समान है जिसमें धान्य न हो और जो खाई न जा सके। भूसी में से दाना और मठे में से मक्खन नहीं निकलता, और चावलों की धोवन में दूध का स्वाद नहीं मिलता। वृक्षों की छाल खाने व चूसने से कोई फल नहीं; और गिरी छोड़कर ऊपरी छिलका खाना मूर्खता है। इसी प्रकार जिसमें ब्रह्मज्ञान न हो; वह उपदेश निस्सार है; और सार को छोड़कर असार का सेवन कौन समझदार करेगा?

अब निर्गुण ब्रह्म का निरूपण किया जाता है। श्रोता लोग अपना मन स्थिर कर लें। सारी सृष्टि की रचना पंचमूर्ति से ही हुई है, पर यह सृष्टि सदा बनी नहीं रह सकती। इसके आदि में भी और अंत में भी वही निर्गुण ब्रह्म रहता है और वही शाश्वत है। बाकी सब पंचभूतों को

नश्वर समझना चाहिए। इन भूतों को परमात्मा कैसे कह सकते हैं। यदि मनुष्य को भूत कहा जाए तो वह भी नाराज होता है। फिर वह तो जगज्जनक परमात्मा है, जिसकी महिमा ब्रह्म आदि भी नहीं जानते। उसे भला भूत की उपमा कैसे दी जा सकती है?

यदि कहा जाए कि जगदीश भी भूतों के समान है तो दोष होता है, और यह बात सभी महापुरुष जानते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश सभी में अन्दर और बाहर वह परमात्मा व्याप्त है। ये पंचभूत तो नष्ट हो जाते हैं ; पर आत्मा अविनश्वर है। जो रूप और नाम हैं, वे सब कोरे भ्रम हैं; और नाम तथा रूप से परे जो ब्रह्म है, उसका रहस्य अनुभव से जानना चाहिए।

पाँचों भूतों और तीनों गुणों से मिलकर अष्टधा प्रकृति बनी है और इसी को दृश्य कहते हैं। वेदों और श्रुतियों में कहा है कि ये दृश्य नष्ट हो जाने वाले हैं और ज्ञानी यह बात जानते हैं कि निर्गुण ब्रह्म ही शाश्वत है। जो शस्त्र से कट नहीं सकता, आग में जल नहीं सकता, पानी में गल नहीं सकता, वायु में उड़ नहीं सकता, गिर-पड़ नहीं सकता, वायु में उड़ नहीं सकता, वह परब्रह्म ही है। उसका कोई वर्ण नहीं है, वह सबसे परे है और फिर भी सदा बना रहता है। चाहे वह दिखाई न पड़े, पर है अवश्य और हर जगह सूक्ष्म रूप से व्याप्त है। मनुष्य की दृष्टि की यह आदत-सी पड़ गई है कि वह उसी का अस्तित्व मानती है जो उसे दिखाई पड़ता है, और जो वस्तु गुह्य होती है उसे वह गोप्य कहता है। पर जो कुछ प्रकट है, उसे असार समझना चाहिए, और जो गुप्त है उसे सार समझना चाहिए। यह बात गुरु से ही अच्छी तरह समझी जा सकती है।

जो समझ में न आवे, उसे विवेक बल से समझना चाहिए; जो दिखाई न पड़े, उसे विवेक बल से देखना चाहिए; और जो जान न पड़े उसे विवेक बल से जानना चाहिए। जो गुप्त हो, उसे प्रकट करना चाहिए; जो असाध्य हो, उसका साधन करना चाहिए, और जो कठिन हो, उसका अभ्यास करना चाहिए। वेद, ब्रह्मा और शेषनाग भी जिसका वर्णन करते-करते थक गये हैं, उसी परब्रह्म को प्राप्त करना चाहिए। यदि कोई पूछे कि उसकी साधना कैसे की जाए, तो इसका उत्तर यह है कि अध्यात्म-सम्बन्धी बातें सुनकर उस परब्रह्म की प्राप्ति करनी चाहिए। वह पृथ्वी, जल, तेज या वायु नहीं है, वह रंग रूप आदि से व्यक्त नहीं होता, वह अव्यक्त है। उसी को ईश्वर समझना चाहिए। और यों तो जितने गाँव हैं, लोगों ने उतने ही देवता बना रखे हैं। जब इस प्रकार परमात्मा के सम्बन्ध में निश्चय हो जाए और उसके निर्गुण होने का विश्वास हो जाए, तब स्वयं अपने सम्बन्ध में खोज करनी चाहिए। जो आत्मा यह कहती है कि यह शरीर मेरा है, उसे शरीर से बिल्कुल अलग समझना चाहिए और जो यह

समझती है कि मन मेरा है, वह वास्तव में मन नहीं है। यदि शरीर का विचार किया जाए तो वह केवल पंचतत्वों से बना है और उन तत्वों को अलग कर देने से केवल आत्मा बाकी रह जाती है।

जिसे "मैं" कहते हैं, उसका वहाँ कहीं पता नहीं रहता और सब तत्व अपनी–अपनी जगह जाकर मिल जाते हैं। यह शरीर पंचतत्वों की बँधी हुई गठरी है और इसका नाश हो जाता है। इसमें केवल एक आत्मा ही है जो सदा बनी रहती है। इसके सिवा तीसरा " मैं " वहाँ कोई है ही नहीं। जब ''मैं'' का ही ठिकाना नहीं है, तब जन्म और मृत्यु किसकी और कैसी ? और आत्मा पाप–पुण्य तथा जन्म–मृत्यु से रहित है। जब उस निर्गुण में पाप–पुण्य और यम–यातना नहीं है, तब " मैं " भी नहीं है, क्योंकि " मैं " भी तो वही निर्गुण आत्मा है। यह जीव देहबुद्धि के कारण बँधा हुआ है यदि विवेक की सहायता से उसका बन्धन खोल दिया जाए तो वह देह से अतीत होकर मोक्ष पद पा जाता है। बस इससे जन्म सार्थक हो जाता है। निर्गुण आत्मा और " मैं " दोनों मिल जाते हैं। पर इस विवेक पर सबसे पहले ध्यान देना चाहिए। जैसे जागने पर स्वप्न नहीं रह जाता, वैसे ही विवेकपूर्ण देखने पर यह दृश्य जगत नहीं रह जाता और अपने स्वरूप का अनुसन्धान करने से ही प्राणी मात्र का उद्धार हो जाता है।

विवेक पूर्वक स्वयं अपने आपको निवेदन करके उसके स्वरूप में मिल जाना चाहिए, और इसी को आत्मा निवेदन कहते हैं। पहले अध्यात्म सम्बन्धी बातें सुननी चाहिए और तब सद्गुरु की सेवा करनी चाहिए। फिर सद्गुरु की कृपा से आत्म निवेदन हो जाता है। आत्म निवेदन के उपरान्त यह बोध होता है कि वह वस्तु (ब्रह्म) निर्मल, अलिप्त और शाश्वत है, और " मैं " स्वयं भी वही वस्तु हूँ। इस प्रकार के ब्रह्मज्ञान से जीव स्वयं ब्रह्म हो जाता है और वह प्रसन्नता से शरीर को प्रारब्ध पर छोड़ देता है। इसी को आत्मज्ञान कहते हैं; इसी से समाधान या शान्ति होती है; और इसी से यह जीव परब्रह्म से अभिन्न तथा भक्त होता है– बिल्कुल उसी में मिल जाता है। अब जो कुछ होना है, वह हुआ करे; जो कुछ जाना हो, वह चला जाए; किसी की परवाह नहीं होती। मन से जन्म और मृत्यु की आशंका नष्ट हो जाती है। इस प्रकार संसार के सब झगड़े मिट हो जाते हैं और ईश्वर तथा भक्त में एकता हो जाती है। पर ईश्वर को मनुष्य सत्सङ्गति के द्वारा ही पहचान सकता है।

शुचिता की आवश्यकता

श्रीमती सरिता भारद्वाज, सांख्ययोगाचार्य

योग के आठ अंगों में यह प्रथम अंग है, जिसके अन्तर्गत अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य का समुदाय है। यह की साधना सार्वभौम महाव्रत है जिसे विश्व के सभी मानव धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भाषा तथा भौगोलिक सीमा के बिना पालन कर सकते हैं, यम की साधना कर लेने से योगी समाधि से जब नीचे उतरता है तो भी व्युत्थान दशा में जिस भूमिका पर वह रहता है वह भूमिका भी पापकर्म के संस्कारों से रहित होती है– क्योंकि उसकी यम नियमों की साधना ने ऐसा कोई छिद्र नहीं छोड़ा होता जहाँ से क्लेश कर्मों के संस्कार प्रवाहित हो सके। यम की साधना के पश्चात् नियमों की साधना है। नियम योग का द्वितीय अंग है। योग सूत्र में भगवान् पतंजलि नियमों की गणना इस प्रकार कराते है – ' शौच संतोष तप: स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानाधि नियमा:।' 2/3।/ शौच सन्तोष तप स्वाध्याय और ईश्वर समर्पण ये पाँच नियम है। यमों की अपेक्षा नियमों की साधना लक्ष्य तक पहुँचाने में अपेक्षाकृत शीघ्र सहायक होती है। व्यक्ति अपने जीवन में योग के किसी एक अंग की ही पूर्णता के साथ साधना कर ले तो वह अंग ही सम्पूर्ण योग का फल देने वाला बन जाया करता है। क्योंकि अंग में अंगी सन्निहित होता है। साधक के जीवन में शौच अर्थात् पवित्रता की धारणा हो जाए तो यह साधना उसे कैवल्य लाभ तक पहुँचा सकती है। भगवान पतंजलि ने इस बात का संकेत निम्नलिखित शास्त्र में दिया–

' सत्यपुरुषो: शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति। ' 3

प्रकृति और पुरुष का मिलाजुलास्वरूप अलग–अलग हो जाए, दोनों अपने शुद्धस्वरूप में आ जायें तो शुद्धि से योगी कैवल्य लाभ करने में समर्थ होता है। पुरुष वृद्धिसत्व के क्लेशकर्मवासना भोग से मुक्त होकर निर्मल ज्योतिस्वरूप हो जाता है तथा प्रकृति भी पुरुष के भोग से उपरत हो जाने पर फिर भोग–साधनरूप दृश्य उपस्थित नहीं करती। इस प्रकार पुरुष के प्रतिबिम्ब से वह भी रहित होकर अपने असली रूप में आ जाती है, यही सत्व शुद्धि है। दोनों ही शुद्ध स्वरूप में होते हैं अत: ईश्वर और अनीश्वर गुणों की साम्यावस्था हो जाती है। इससे प्रकृति और पुरुष दोनों की गुण धर्मिता से मुक्ति हो जाती है। विवेक ज्ञान होने पर अज्ञान निवृत्त हो जाता है। अज्ञान के दूर होने पर क्लेशमूलक कर्मविपाक का भी अभाव हो जाता है। दोनों की स्वतन्त्र स्थिति एक जैसे होती है यही साम्यता है वैसे उनका तलाक हो जाता है, अवधूत दत्तात्रेय ने दोनों के संयोग और वियोग रूप का सुन्दर दृष्टान्तों द्वारा चित्रण

किया है :–

'मशक: उदम्बरे इषीका, मुंज मत्स्याम्भसा यथा।

एकत्वेऽपि पृथग्भाव:, तथा क्षेत्रात्मनोर्नृप।। —मा.पु. 16

जैसे गूलर में कीड़े मूंज में सींके तथा जल में मछली एकीभाव से रहकर भी एक दूसरे से अलग हैं, इसी प्रकार पुरुष(आत्मा) तथा प्रकृति (क्षेत्र) अलग–अलग हैं।

शौच भावना दृढ़ होने से संतोष अर्थात् पदार्थों की अनित्यता समझकर उनके प्रति अलिप्सा की उपलब्धि हो जाती है। अनीश्वर गुणों के क्षय के लिये प्राण संरोधरूप का उदय हो जाता है तथा उससे स्वाध्याय होने लगता है। स्वाध्याय के परिणामस्वरूप परम गुरु ईश्वर को सर्व कर्म समर्पणरूप ईश्वर प्रणिधान होता है जिससे निर्विघ्न कैवल्य लाभ प्राप्त हो जाता है। ईश्वर की कृपा से योगी सदा योगयुक्त होता है।

शुद्धि की भावना से मनुष्य का देहाध्यास छूट जाता है। देह और गेह की ममता ही दु:ख का मूल है।

'ममेति मूलं दु:खस्य, न ममेति निर्वृति:। —मा.पु.

अवधूत दत्तात्रेय अलर्क को दु:ख का स्वरूप समझाते हैं कि मेरी देह, मेरा घर–यह–मेरा–मेरा ही दु:ख की जड़ है, मेरा नहीं की भावना ही सुख का मूल है। जैसे बिल्ली घर में आकर चूहे खाती है तो हमें दु:ख नहीं होता किन्तु वह बिल्ली हमारी पालतू चिड़ियां या मुर्गी को खा लेती हैं तो हम लाल–पीले हो जाते हैं। ममता रूपी अंकुर से ही अज्ञानरूपी महावृक्ष उत्पन्न होता है। घर, जर, जमीन उसकी ऊँची–ऊँची शाखायें हैं तथा स्त्री पुत्रादि उसके पत्ते हैं, पुण्य पाप उसके फल तथा सुख दुख उस के बड़े फल हैं मोह सम्बन्ध वृक्ष की रक्षा करने वाला थांवला है, यह वृक्ष बढ़कर मोक्ष–मार्ग को ढ़क रहा है। भ्रान्तिवश जो अनित्य अशुचि इस अविद्यातरु का आश्रय लेता है उसे शान्ति तथा शीतल छाया कहाँ से मिल सकती है?

अत:–

" यस्तु सत्संग पाषाण शितेन ममता तरु:।

छिन्नोविद्या कुठारेण ते गतास्तेन वर्त्मना।।

मा.पु.

विद्या रूपी कुठार को सत्संग रूपी पत्थर से तेज करके, इस ममता रूपी वृक्ष का उससे छेदन करने में समर्थ होने वाले विरले पुरुष ब्रह्म के पद को प्राप्त कर सकते हैं, यह ब्रह्मपद शीतलता तथा शान्ति प्रदान करने वाला निष्कण्टक मार्ग है।

शौच भावना से ममता का नाश होता है, शौच निष्ठा का परिणाम बताते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं :–

शौचात्स्वाङ्ग जुगुप्सा परैरसंसर्गः। 2/40

अशुचि, अपवित्रता का साक्षात्कार होने पर अपने शरीर में आसक्ति नहीं रहती, शरीर की आसक्ति से व्यक्ति उसको सजाने, सम्हलने उसे ठीक रखने के लिए धन और समय ही खर्च नहीं करता, न जाने कितने अनर्थ भी करता है। शरीर को बार–बार धोने, सम्भालने पर भी वह वात, पित्त, कफ, मलमूत्र, पीब के विकारों से भरा रहता है। निरन्तर क्षीण होता रहता है। जिन्हें विवेक हो जाता है वे इस अपवित्र शरीर के लिए चिन्तारहित हो जाते हैं। शरीर की शुद्धि करते–करते भी वह दुर्गन्धि और रोगाणुओं का घर बना रहता है, यह समझकर योगी लोग शरीर पर गर्व नहीं करते न अंगों की सुन्दरता पर मुग्ध होते हैं। शरीर शुद्धि होने से रूपासक्ति हो जाती है। किसी का सुन्दर शरीर रूप देखा, उसके पीछे दीवाने हो जाते हैं। उसे प्राप्त करने के लिए सर्वस्व दाँव पर लगा देते हैं। ग्रीक साहित्य तो क्लिओपेट्रा जैसी सुन्दरी नारियों को प्राप्त करने के लिए किए गये युद्धों के वर्णनों से भरा है। शरीर में दोष दर्शन होने लगे तो किसी के शरीर में आसक्ति नहीं होती। जब सुन्दर शरीर प्राप्त नहीं हो पाते तो कुछ लोग आत्महत्या तक कर लेते हैं तथा कुछ सुन्दरियों की हत्या तक कर देते हैं। शौच भावना के विकास से दूसरों के शरीर में भी आसक्ति नहीं होती। किसी को चाटना, चूमना या उसके शरीर की निन्दा या प्रशंसा करना भी नहीं अच्छा लगता। स्त्री हँसती है तो उसकी मुस्कान या उसके दाँतों पर साधक आसक्त नहीं होता क्योंकि दाँत यथार्थ ज्ञान में हड्डी से भिन्न कोई अन्य पदार्थ नहीं है, नेत्रों की सुन्दरता भी कोई आसक्त होने वाली चीज नहीं है क्योंकि वह भी वसा का विकार है। उसके स्तन मांस पिण्ड मात्र हैं तथा उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग मलमूत्र वसा अस्थि मांस से भिन्न कुछ नहीं है। इस प्रकार शुद्धता का बोध होने पर दूसरे शरीरों के प्रति मोह भी नष्ट हो जाता है।

बाह्यशौच के अभ्यास के बाद जब अन्तःशौच का अभ्यास हो जाता है, भीतर की शुद्धि से चित्त के रागद्वेष आदि मल दूर हो जाते हैं तो :–

'सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रिय–

जयात्म दर्शन योग्यत्वानिच। " 2/41

चित्त के मल नष्ट होने पर सतोगुण का विकास होता है जिससे स्वतः आनन्दानुभूति होती है। आनन्दमय चित्त रहने से 'गीता' में प्रतिपादित–

प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते'

तथा

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते

सिद्धान्तानुसार विक्षेपों का अभाव हो जाता है जिससे बुद्धि एकाग्र हो जाती है। एकाग्रता से प्रत्याहार एवं इन्द्रिय जय तथा आत्मदर्शन की योग्यता प्राप्त होती है।

यम सार्वभौम महाव्रत कहे गये हैं क्योंकि वे प्रत्येक देश, प्रत्येक काल तथा प्रत्येक अवस्था में नियत रूप से सभी के द्वारा निभाये जा सकते हैं। यम आन्तरिक चेतना से अधिक जुड़े हैं किन्तु नियम बाह्य तथा आन्तरिक दोनों विधानों से युक्त हैं तथा प्रवृत्ति परायण के लिए अधिक उपयोगी हैं। योगसूत्रों के व्याख्याकार नागोजी भट्ट का मत है कि –

'यम नियमयो:यमानां निवृत्ति रूपत्वेन शक्यसम्पदानत्वेन त एव परम हंसाना–मावश्यका:।

नियमास्तु प्रवृत्ति रूपतया योगान्तरायत्वेन नावश्यका:। 'यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्पर: क्वचित्'।

' इति स्मृतेश्च '

यम निवृत्ति मार्ग को प्रशस्त करने वाले हैं। अत: परमहंस जीवन मुक्तों को उनका पालन आवश्यक है। नियम प्रवृत्ति मार्ग में ले जाने वाले होने से योग के अन्तराय बन जाते हैं अत: आवश्यक नहीं है। अपने मत का उपन्यास करते हुए नागोजी भट्ट ने साक्ष्य रूप में स्मृति वाक्य को उद्धृत किया है। जिसका आशय है कि यमों को अनिवार्यरूप से पालन करना चाहिए, नियमों को कहीं–कहीं पालन करना चाहिए। नियमों के विषय में मार्कण्डेय पुराण में भी यह व्यवस्था दी गई है कि वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले व्यक्ति को नियम आवश्यक है और वे नियम हैं :–

सत्यं शौचम् अहिंसा च अनसूया तथा क्षमा।
आनृशंस्यम् अकार्पण्यं संतोषश्चाष्टमो गुण:।।

सत्य, शौच, अहिंसा, अनसूया, क्षमा, आनृशंसता, अकृपणता, ये आठ नियम सभी वर्णाश्रमों को पालन करना चाहिए। महाराज मनु ने उपनयन के बाद शुचिता की शिक्षा का सर्वप्रथम आदेश दिया है:–

' उपनीय गुरु: शिष्यं शिक्षेत् शौचमादित:। '

शरीर शुद्धि से लेकर मन:शुद्धि, ऐन्द्रिय शुद्धि, आत्मशुद्धि, स्थानशुद्धि, भूतशुद्धि, माला शुद्धि, मंत्रशुद्धि, अर्थशुद्धि, शब्दशुद्धि आदि सभी प्रकार की शुद्धता सिखाने का संकेत इस वाक्य में किया गया है। शौच में शुद्धता के साथ पवित्रता का भाव भी सन्निहित है। कोई वस्तु शुद्ध होते हुए भी पवित्र नहीं हो सकती तथा पवित्र होने पर भी अशुद्ध हो सकती है। जैसे शौचालय फिनायल से धोकर साफ कर दिया जाए तो वह साफ तथा शुद्ध तो हो गया किन्तु वहां बैठकर भोजन नहीं किया जा सकता। क्योंकि शुद्ध होते हुए भी वह स्थान पवित्र नहीं है। पवित्रता की भावना कर्म के द्वारा आती है। शौचालय में शौचकर्म की भावना के कारण शुद्ध होने पर भी वह पवित्र नहीं कहा जा सकता। शौच भावना का विकास होता चला जाए तभी कल्याण है अन्यथा मिट्टी से इतने बार हाथ धोना, एक बार बाई ओर कुल्ला करना फिर दाई

ओर कुल्ला करना आदि आचार संहिता के वितण्डावाद में उलझकर साधक रह जाता है जो जल गड्ढे में गिरकर रह जाता है वह सड़ने लगता है। जो सतत् प्रवाहित होकर आगे चलता चला जाता है वह अनन्त जल–राशि का अंग बन जाता है। वस्तुतः शुचिता के मूल में यही सिद्धान्त है कि अंश पूर्ण में मिलने पर पवित्र हो जाता है। जूठा जल यदि बहती हुई नदी में फेंक दिया जाए तो नदी के जल के संयोग से वह भी शुद्ध जल बन जाता है। शौच के अभाव में व्यक्ति शोक ग्रस्त होता है। शुचिता की कमी ही शोक है। गन्दगी साफ भी न हो जाए तो गन्दगी से रोग होकर शोक होगा। मन में राग–द्वेष की शुद्धि न हुई तो परिणाम शोक होगा। शूद्र वही है जो शुचिता से अलग है। जिसमें शुद्ध रहने की वृत्ति नहीं है वही शूद्र माना जाता है। जो संस्कारों के द्वारा शुद्ध हो पवित्र हो जाता है, जैसा था, उससे शुद्ध हो जाता है वह द्विज कहलाता है। शूद्र में देह–धन–गेह तथा अहंकार का अधिक बोध होता है। फलस्वरूप उसके जीवन में शोक और दुःख अधिक रहता है। जो विवेक वैराग्य से शुद्ध हो जाता है वह ब्राह्मण कहलाता है। उसके जीवन में संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–शरणागति की वृत्ति सहज हो जाती है। भारतीय समाज में छूआछूत का विकृत भाव अज्ञान और पाखण्ड के कारण फैल गया है। तात्विक दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन–यापन करने वाले में ही अस्पृश्य की निष्ठा तात्विक होती है बाकी सब पाखण्ड करते हैं। अपनी साधना की पराकाष्ठा पर पहुँचने पर आध्यात्मिक पुरुष भी

'शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः (गीता)

कुत्ते और चाण्डाल को एक रूप से देखते हैं। यह स्थिति अज्ञानता के परिणामस्वरूप पैदा होने पर दोष बन जाती है।

झूठहिं लेना, झूठहिं देना।
झूठे भोजन, झूठ चबेना।

यह कलियुग का धर्म बन गया है। भक्ष्या–भक्ष्य भोजन करने में हम लोग गौरव का अनुभव करते हैं।

'आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः
सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

आहार शुद्धि से मन शुद्ध होता है तथा बुद्धि–शुद्धि से स्मृति का उपस्थान होता है जिससे संस्कारों का साक्षात्कार होकर संस्कारचक्रों का समस्त चक्र काटने में साधक समर्थ होता है। अतः योगाभ्यास करने वाले साधक को पवित्रता से बनाये हुए, अपने इष्ट को भोग लगाकर 'यज्ञशेष' भोजन को पवित्र स्थान पर बैठकर शान्त तथा प्रसन्नचित्त से करना चाहिए जिससे चित्त की चंचलता दूर हो। भोजन शुद्ध और सात्विक हो तथा हिंसा तथा अन्याय से प्राप्त न हो तभी आहार शुद्धि होगी। प्राणायाम, आसन, मुद्रा, बन्ध तथा तप से शरीर तथा मन की

शुद्धि होती है तथा धारणा, ध्यान, समाधि से बुद्धिसत्व की शुद्धि होती है।

शौच निष्ठा का अभ्यास होने पर साधक को पवित्र आत्माओं का सान्निध्य प्राप्त होता है। भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार–

शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।

शुचितामय वातावरण में योगी जन्म लेते हैं। माता–पिताओं का जीवन पवित्र होता है उनके यहाँ योगभ्रष्ट जन्म लिया करते हैं। शौच भावना की पराकाष्ठा, निरभिमानिता, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरु की सेवा, स्थिरता तथा आत्मनियन्त्रण द्वारा ही सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है।

'आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्म विनिग्रहः।' 13/7

शौच भावना को दैवी सम्पति में परिगणित किया गया है। दैवी सम्पति सम्पन्न साधन मोक्ष पद पर आरूढ़ हो पाता है।

तेजः क्षमा धृतिः शौचम द्रोहो नाति मानिता।
भवन्ति संपदं दैवीम– भिजातस्य भारत।। गीता 16/3

आसुरी प्रवृत्ति के व्यक्तियों में न शौच होता है न आचार तथा जीवन में सत्य व्यवहार होता है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरा सुराः।
न शौचं न चापिचा चारो न सत्यं तेषु विद्यते।। 17/14

भगवान श्रीकृष्ण ने शौच को शारीरिक तप कहा है।

देव द्विज गुरु प्राज्ञ, पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं तप उच्यते।। 17/14

देव, ब्रह्म,गुरु तथा विद्वानों का पूजन, शुचिता, सरलता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा का पालन शारीरिक तप कहा गया है।

'तपसा चीयते ब्रह्म '।

तपस्या के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ब्रह्म की अनुभूति करने वाले अर्थात् ब्राह्मणों के स्वभाव में ही शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान–विज्ञान प्रेम तथा ईश्वर में विश्वास होता है।

" शमोदमस्तपः शौचं, क्षान्तिरार्जवम् एव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं, ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।। 18/42

शौच के सामान्य उपाय–

" अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति।।

जल और मिट्टी से शरीर शुद्धि होती है। मन की शुद्धि सत्य भाषण से होती है। विद्या तथा

तप से भूतों की शुद्धि होती है तथा बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है।

मलमूत्र त्याग करने के पश्चात् शुद्धि आवश्यक है। दि में उत्तर दिशा की ओर तथा रात्रि में दक्षिण दिशा की ओर तथा दोनों सन्ध्या काल में उत्तर की ओर मुँह करके मलमूत्र त्याग करें। मलमूत्र त्याग कर गुदा और मूत्रेन्द्रिय को मिट्टी तथा जल से शुद्धि करें। तत्पश्चात् सात बार दोनों हाथों को मिट्टी से साफ करें। साबुन से हाथ धोने पर दुर्गन्ध नहीं जाती तथा नाक, कान तथा दांतों के रोग हो जाते हैं। समस्त गन्धों का मूल पृथ्वी है–

'गन्धवती पृथिवी'।

अतः मिट्टी से हाथ धोना चाहिए। पैरों को धोना भी आवश्यक है जिससे सिरो रोग न हों। मलत्याग के बाद बारह बार कुल्ला करें। भोजन के बाद सोलह बार तथा मूत्रत्याग के बाद चार कुल्ले करें। जिह्वा को खींचकर मलने से जिह्वा शुद्ध होती है। हाथ में अंगूठे से रगड़कर मुख के ऊपरी भाग तथा तालू की शुद्धि करें।। बबूल या मौलश्री तथा नीम की दाँतुन से दाँतों की शुद्धि होती है। टूथपेस्ट से जिह्वा तथा मुख में स्थित अन्नाशय के सूक्ष्म तन्तु शुद्ध नहीं हो पाते जिससे उदर रोग हो जाते हैं।

स्नान से शरीर शुद्धि करनी चाहिए। बाहरी जल का स्नान बाह्य शरीर को शुद्ध करता है तथा मानसिक स्नान योगियों को पवित्र करता है। इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्णा नाड़ियाँ गंगा, यमुना, सरस्वती नदियाँ हैं। जिनका संगम आज्ञा चक्र में होता है। उसमें ध्यान करने से योगी का स्नान होता है। तथापि ठंडे जल से स्नान करें। स्नान के समय पवित्र होने की भावना को दृढ़ करता जाय। स्नान के बाद आसन सगर्भ (मंत्रपूर्वक) प्राणायाम तथा मंत्र जप ध्यान करने से सम्पूर्ण शुद्धि होती है। नेति, धोति, नौली, वस्ती, कपालभाति तथा त्राटक की क्रियाओं से नाड़ी शुद्धि होती है। राजयोग के द्वारा भी मनोलय के साथ प्राणलय होने पर इन क्रियाओं के बिना ही नाड़ी शुद्ध हो जाती है। सूत्र, जल, दुग्ध, तथा घृत, नेति, वारिसार, कुँजल तथा बन्धों के अभ्यास से शरीर के दोषों से शुद्धि होती है जिससे चित्त प्रसादयुक्त बनता है।

देवता का पूजन तथा गुरुसेवा वस्त्र तथा शरीर शुद्धि के बाद ही करनी चाहिए। शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि जो मलिन रह कर देव कार्य करता है उसका वंश नहीं चलता।

निर्बीजत्वं नरो याति नारी वा शौच वर्जिता। – मार्कंडेय पु.

शौच के नियम:–

चक्षुः पूतः चरेन्मार्ग वस्त्रपूतं तलं पिबेत्
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनः पूतं ससाचरेत्।। – लिंग पुराण

मार्ग में भलीभाँति देखकर चलें तथा वस्त्र से छानकर जल पियें सत्य वचन पवित्र होते हैं तथा सोच–विचार कर किया गया कार्य पवित्र होता है। अपवित्र जल पीने पर पाँच सौ बार

अघोरमंत्र का जाप करने से शुद्धि होती है। लिंग पुराण

गुरु द्रोह के पातक की शुद्धि एक करोड़ प्रणव जप से होती।

तीर्थोदकं वह्निश्च-- नान्यतः शुद्धिर्महति।' – कालिदास

तीर्थों का जल तथा अग्नि स्वयं ही पवित्र है तथा दूसरों को पवित्र करने वाले हैं अतः इनके सेवन से सारे पातकों की शुद्धि हो जाती है।

वस्त्रों की शुद्धि–रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों की शुद्धि रुक्ष वायु से होती है। अण्डी वस्त्रों (क्षौम) की शुद्धि सफेद सरसों से, छाग कम्बलों शुद्धि तक से अन्य प्रकार के वस्त्रों की शुद्धि जल से होती है।

वस्तु शुद्धि–वस्त्र, माला, आसन और पोथी अपनी ही प्रयोग में लावें। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के परमाणु उसकी वस्तुओं के साथ लग जाते हैं। अपने काम में आने वाली वस्तुओं को पवित्र कर ही प्रयोग में लाना चाहिए। कांसे का पात्र भस्म से, लौह पात्र क्षार से, ताम्र पात्र खटाई से, रांगा और शीशे का पात्र भी खटाई से शुद्ध होता है। सोने और चाँदी का पात्र जल से धोने मात्र से शुद्ध हो जाते हैं। धातु पात्र दूषित होने पर अग्नि में तपाने से शुद्ध हो जाते हैं।

तृण तथा काष्ठादि वस्तुओं की शुद्धि पवित्र जल के द्वारा होती है। यज्ञपात्रों–सींग, अस्थि, दाँत आदि के बने पात्रों की शुद्धि छिलाई कर देने से होती है। अन्न भी कुशाजल से प्रोक्षण करने पर शुद्ध हो जाता है। शाक, मूल तथा फलों की शुद्धि भी कुशा द्वारा जल मार्जन से होती है। घर की शुद्धि गाय के गोबर से लेप करने पर होती है। गाय की प्यास बुझ जाए इतना जल यदि भूमि में हो तो वह शुद्ध माना जाता है। धोबी के यहाँ से धुल कर आये वस्त्र कुशाजल के प्रोक्षण से पवित्र होते हैं। शयन, भोजन, जमांई, पेय पदार्थ पीकर थूककर जल से आचमन करने से मुख की शुद्धि होती है।

कौआ, कुत्ता, शूअर, गधा, चाण्डाल, मुर्गा आदि का स्पर्श होने पर तथा मैथुन के पश्चात् स्नान करने से शुद्धि होती है। रजस्वला तथा सूतिका स्त्री तथा अन्त्यजा स्त्री का स्पर्श होने पर स्नान से शुद्धि करनी चाहिए। वेदज्ञ ब्राह्मण की शुद्धि एक दिन में हो जाती है अन्य असगोत्र वाले व्यक्तियों की मृतक तथा जातक अशौच में चतुर्थ दिन में शुद्धि होती है। जो कुटुम्बी हैं उनकी शुद्धि ग्यारहवें दिन के पश्चात् स्नान करने से होती है। छः महीने के बाद तीन वर्ष पर्यन्त तक मरने का पता चले तो तीन रात्रि का अशौच होता है।

सूतिका अशौच दश दिन तक माता को होता है तथा पिता को तीन रात्रि का अशौच होता है। अशौच सात पीढ़ी तक सपिण्डता होने पर एक ही गोत्र के लोगों को होता है। एक वर्ष के बाद अशौच का समाचार मिले तो स्नान करने से शुद्धि हो जाती है। बान्धव के अतिरिक्त अन्य किसी का दाह कर्म करने पर वस्त्रों सहित स्नान करने से उसी दिन शुद्धि हो जाती है। श्मशान यात्रा में सम्मिलित होने पर स्नान कर घृत का पान करने से शुद्धि हो जाती है।

आचार्य और गुरु के मरने पर तीन रात्रि अशौच माना है। मामा के मरने पर तीन रात्रि का अशौच होता है।

यह शौचा शौच विचार गृहस्थों के तथा ब्रह्मचारियों के लिए विशेषरूप से पालन करना चाहिए। शास्त्रकारों का कथन है कि यतियों, संन्यासियों तथा विरक्तों को ये नियम पालन करना अनिवार्य नहीं है।

'अशौचं चानुपूर्वेण– यतीनां नैव विद्यते। '– लिंगपुराण

स्त्रियों को शौचाचार का अधिक ध्यान चाहिए। रजस्वला स्त्रियों को सम्भाषण, स्नान, गान, रोदन, सहास्य, सवारी में जाना, काजल लगाना, ताश आदि खेलना, दिवाशयन, क्रीम पाउडर लगाना, दन्त धावन, मैथुन तथा दातुन करना वर्जित है। रजो दर्शन के प्रथम दिन स्त्री चाण्डाली के समान, द्वितीय दिन ब्रह्म घातिनी के समान तथा तीसरे दिन आधी अशुद्ध होने से स्पर्श योग्य नहीं होती तथा अशुद्ध मानी जाती है। चौथे दिन स्नान करके भी पन्द्रह दिन तक रज की अशुद्धि विद्यमान रहती है। अतः रजस्वला को देवार्चन और नमस्कार के कार्य नहीं करने चाहिए उसके सम्भाषण तथा अंग स्पर्श से रजस्वला के दोष आ जाते हैं। शुद्धि स्नान के बाद स्त्री को परपुरुष का दर्शन नहीं करना चाहिए। सर्वप्रथम भगवान भास्कर के दर्शन कर पंचगव्य अथा दुग्ध पीकर आत्मा शुद्धि करे।

इसी प्रकार धन शुद्धि चतुर्थ धर्मकार्य करने से होती है। श्रीमद्भागवत् में सब प्रकार की शुद्धि के निम्न उपायों का उल्लेख है।

कालेन स्नान शौचाभ्याम् संस्कारैः तपसेज्या।
शुद्धयन्ति दानैः सन्तुष्टयां दवाणयाऽऽत्मविद्यया।। – 10/5/4/50

गर्भ शुद्धि संस्कारों से , भूमि, नूतन जल आदि की शुद्धि समय पर स्वतः शरीरादि की शुद्धि स्नान से, इन्द्रिय मन की शुद्धि तपस्या से ब्राह्मणादि की यज्ञ से, धन धान्य की शुद्धि दान से, संतोष से मन की तथा आत्मज्ञान से आत्मा की शुद्धि होती है।

जो ब्रह्मनिष्ठ युक्त योगी तथा ध्यानी हैं वे स्वर्ण के समान सदा निर्लिप्त तथा शुद्ध होते हैं अतः विशुद्धों की शुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे कि लिङ्ग पुराण में कहा गया है–

योगध्यानैकनिष्ठाश्च, निर्लेपाः काचनं यथा।
शुद्धान्तं शोधन नास्ति, विशुद्ध ब्रह्म विद्यया।।

रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि जिनका लोटा सोने का है उन्हें उसे मांजने की जरुरत नहीं है किन्तु जिनका पीतल का है उन्हें प्रतिदिन उसे साफ करना चाहिए। उसी तरह जो समाधिनिष्ठ नहीं हुए उन्हें स्वयं के लिए तथा लोक मर्यादा के लिए इनका पालन करना चाहिए।

"ऋजु योग साधना"

डॉ. जे० पी० शर्मा, कृषि उप निदेशक से० नि०, पौण्टासाहिब, हि०प्र०।

जीवात्मा का परमात्मा के साथ जुड़ना योग कहा जाता है। भगवान की प्राप्ति के अनेकों साधन सुलभ हैं। राजयोग, हठ्योग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, नादयोग, क्रियायोग तथा सांख्ययोग के द्वारा मनुष्य प्रभू की कृपाओं को प्राप्त कर परमात्मा से जुड़ा रहता है। जिसे जो साधन सरल, सुलभ लगता है उसे अपना लेता है।

धार्मिक ग्रन्थों के सुनने, सुनाने से मनुष्य में भक्ति की भावना जागृत होने लगती है। जिससे धीरे–धीरे वैराग्य जागने लगता है तथा मानव भगवान के गुणों को अपनाने का प्रयत्न करने लगता है जिसे सामान्य भाषा में भक्ति कहते हैं। भक्तियोग, अपनाने के लिए सभी को समान अवसर होते हैं। भक्ति सभी के लिये राजपथ की तरह है। अन्धे, लंगड़े, बूढ़े, बच्चे, रोगी आदि सभी स्वच्छन्द होकर किसी भी देव की भक्ति कर सकते हैं। परन्तु भक्ति करने की एक योग्यता की आवश्यकता है जिसे ''श्रद्धा'' कहते हैं।

गौर कीजिए जिस मनुष्य का हृदय कोमल न हो, जिसे भगवान के गुणों के सुनने से रोमांच न होता हो, जिसकी आँखों में प्रेमाश्रु न बहता हो, भला वह भक्ति कैसे कर सकता है? भक्ति भी प्रायः दो तरह की होती है। प्यासा मनुष्य या कोई प्राणी पानी बिना रह नहीं सकता, अग्नि लगी देखकर सब दूर भागते हैं, ये सब मानव के स्वाभाविक गुण होते हैं। अतः जब प्रभु के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा होती है, उसे स्वाभाविक भक्ति कहा जाता है। परन्तु धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने तथा सुनने से जब भगवान के प्रति भक्ति की इच्छा जागती है उसे 'वैधी'' भक्ति कहते हैं।

परन्तु जिन मनुष्यों में उपरोक्त दोनों प्रकार के भाव नहीं हैं उनके लिये भी निम्न नौ उपाय भक्ति के बतलाये हैं।

1. श्रवण, 2. कीर्तन, 3. वन्दन, 4. पादसेवन, 5. सख्य, 6. दास्य, 7. अर्चन, 8. स्मरण तथा 9. आत्मनिवेदन। दास्य, सख्य, वात्सल्य शान्त और मधुर–ये पाँच भाव हैं।

इन्हीं भक्तिसागर का मंथन करके सर्वसाधारण के लिए पूर्वजों ने अल्पीभाव बनाकर ''ऋजुयोग'' मार्ग बनाया है। ऋजुयोग भी भक्तियोग के अन्तर्गत है। जिसके लिये मृदुता और सरलता ही आवश्यक गुण हैं। हमारे जीवन में आडम्बर तथा दिखावा पग–पग पर होता है। बनावटपन से जीवन घिरा रहता है। दिखावा बहुत करते हैं। अगर यह दिखावा, झूठ का पर्दा मानव पटल से मिट जाये तो वह प्यारे प्रभु हमें खुशी–खुशी अपने वक्ष स्थल से लगा लेंगे। छोटा सा नन्हा शिशु अपने मृदुल स्वभाव, बाल क्रीड़ाओं तथा प्यारी मुस्कानमयी किलकारियों

से हमें उसे प्यार करने के लिए बाध्य कर देता है। हम अनायास ही उसे प्यार करने लगते हैं। वह मासूम प्यारा शिशु कभी किसी से नहीं कहता कि आप मुझे प्यार करो। परन्तु बच्चे की सरलता, मृदुता और निष्कपटता भरी चेष्टाओं को देखकर हम उसे प्यार किये बिना नहीं रह पाते। इसी तरह यदि मानव के जीवन से कपट, छल, राग, द्वेष निकल जाये तो भगवान भी हमें प्यार करने को अवश्य विवश हो जायेगा। मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्री राम जी ने कहा है–

''**निर्मल मन जन मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।**' परन्तु छलकपट जीवन से कैसे दूर हों? ऋजु–योग इसके लिये रामबाण औषधि है। ऋजु योग को सरलता और सुगमता से अपनाया जा सकता है। जिसकी नीव ''श्रद्धा'' से जुड़ी है। सुनकर, पढ़कर, ध र्मशास्त्रों से अगर थोड़ी भी श्रद्धा जाग जायेगी तो आप सरलता से ऋजुयोग के अधिकारी बन जायेंगे। शास्त्र वाक्यों में, गुरुवाक्यों में श्रद्धा तो होनी ही चाहिए। थोड़ी श्रद्धा अपनाने पर कालान्तर में स्वतः ही धीरे–धीरे बढ़ जाती है। धर्मग्रन्थों जैसे गीता, रामचरितमानस, महाभारत, आदि पढ़ना शुरू करें तब शुरू–शुरू में कुछ परेशानियाँ जान पड़ती हैं, परन्तु लगातार अर्थ सहित अध्ययन करते रहने से सरलता आ जाती है। साथ ही श्रद्धा, विश्वास भी भगवान के प्रति बढ़ने लगता है।

अतः मनुष्य जब श्रद्धापूर्वक धर्मशास्त्रों को पढ़ता है, सुनता है अथवा सुनाता है, सत्संग करता है, कीर्तन करता है तथा भजन या मंत्रजप करता है, उसे 'ऋजु–योग' कहते हैं।

इस प्रकार ऋजु–योग के चार अंग हैं–सत्संग, भगवत्कथा श्रवण, कीर्तन और जप। इन चारों के द्वारा मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। ऋजुयोग के सभी अधिकारी हैं। यह सभी के लिए सुगम और सरल साधन हैं। कोई विशेष कठिनाई नहीं है। न ही कोई विशेष बन्धन। सभी प्रभु की शान, शौकत, मर्यादायें तथा वैभव जानना चाहते हैं ताकि हम भी उस तक पहुँच सकें। आइये प्रभु तक पहुँचने के साधन जानें–

1. **सत्संग**–ऋजुयोग का प्रथम सोपान सत्संग है। भगवान कपिलमुनि ने अपनी माता देवहूति को ऋजुयोग का उपदेश दिया और कहा–अन्तःकरण तथा बाह्यकारणों को आनन्द देने वाली कथायें साधु पुरुषों के सत्संग में ही सुनने को मिलती हैं। उन कथाओं के सुनने मात्र से परमात्मा स्वरूप प्रभु की प्राप्ति के लिये श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा जागने से रति होती है तथा रति होने से भक्ति प्राप्त होती है। सत्संग के बिना मनुष्य ऋजुयोग के मार्ग पर नहीं जा सकता। साधु अर्थात् सज्जन पुरुषों का साथ ही सत्संग कहा गया है। उनके सानिध्य में प्रभु के गुणों का ज्ञान मिलता है। इसी लिये शास्त्रों में भी सत्संग की महिमा विस्तृत रूप से भरी पड़ी है। साधू सदैव दयालु, सत्यभाषी, मृदुलता लिये, शान्त, निरन्तर भक्ति करने वाले वीतरागी, गृहत्यागी, सद्ग्रन्थों को सुनने–सुनाने वाले, सर्वप्राणियों के मित्र, तथा निर्वैर स्वभाव के होते हैं। वे सदैव अपनी चिन्ता त्यागकर परोपकार तथा प्राणीमात्र के दुख दूर करने

में लगे रहते हैं। उनका कोई पल बेकार नहीं जाता। स्वभाव से स्वाध्यायशील होते हैं। साधु पुरुष सदैव दूसरों के दुख देखकर दु:खी रहते हैं। सदैव दूसरों के दुख दूर करने के उपाय ढूंढते रहते हैं। उनका हर कार्य सेवा करने का होता है। उनकी हर चेष्टा परोपकार से भरी रहती है। दूसरों की निन्दा करना उनके लिये पाप होता है। उनकी हर क्रिया प्रेम से सनी रहती है। दूसरों के गुणों को प्राप्त करने में सदा तत्पर बने रहना उनका स्वभाव होता है। राजा भर्तृहरि ने संत की कैसी सुन्दर व्याख्या की है–

मनसि वचसि काये प्रेम पीयूष पूर्णा
स्त्रिभुवन उपकार श्रेणीभि: प्रीणयन्त:।
परगुणपरमाणून पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्त: सन्ति सन्त: कियन्त:।।

अर्थात् जिनका मन प्रेम से ओतप्रोत हो, जिनकी वाणी में प्रेम और मधुरता है, जिनके शरीर अंग प्रत्यंगों की चेष्टाओं से प्रेम झलकता हो और जो अपने उपकारों की बाढ़ से त्रिभुवन को नहाते से रहते हों तथा दूसरों के अणुमात्र गुणों को पर्वत के समान बनाकर अपने हृदय में विकसित करते रहते हों। ऐसे सन्त इस पृथ्वी पर कितने हैं? इसलिए सौभाग्य से ऐसे सन्त मिलें तो उनका सत्संग करना ही चाहिए।

2. भगवत्कथा श्रवण–इच्छा से या दूसरों के कहने से जैसे भी बने भगवत्कथा श्रवण करनी ही चाहिए। भगवत्कथा श्रवण का नशा लग जाना ही परमोद्धार की सीढ़ी है। वेद शास्त्रों, धार्मिक पुस्तकों का पढ़ना, सुनना ही ऋजुयोग का दूसरा सोपान है। नशीली वस्तुयें खाने पर शुरू शुरू में कड़वापन का अनुभव होता है, परन्तु लगातार खाने से नशा होने लगता है तथा अच्छा लगने लगता है। इस प्रकार खाने की आदत बन जाती है। उसी प्रकार, भगवत्कथा श्रवण से धीरे–धीरे आनन्द आने लगता है और सुनने में मन लगने लगता है। कभी–कभी शरीर रोमांचित हो जाता है। एक बार अगर सुनने में मन न भी लगे फिर भी हठपूर्वक भगवत्कथा सुननी ही चाहिए। भगवान कपिल मुनी जी ने खूब कहा है–

जिन्होंने अपने सारे कार्य मेरे ही अर्पण कर दिये हैं और जिन्हें मुझे ही पाने की अभिलाषा है, वे मुझसे एकात्म होने की अर्थात् मोक्ष की भी इच्छा नहीं करते, क्योंकि वे तो मेरे चरणों की सेवा में व्यस्त हैं। अगर मन न भी लगता हो तब भी वे आपस में मेरे ही गुणों की चर्चा करते हैं।

भगवत्कथाओं को सुनते–सुनते, धीरे–धीरे रस आने लगता है। जैसे छोटे बच्चों को शुरु में हठपूर्वक माता उन्हें भोजन खिलाना सिखाती हैं। खाते–खाते बच्चों को अभ्यास तथा खाने की आदत हो जाया करती है। रुचि खाने की बढ़ने लगती है तब बच्चा खाना खाये बिना नहीं रह पाता और खाना मांगने लग पड़ता है। खाने को तड़पने लगता है। इसी तरह मनुष्य

हठपूर्वक कथा सुनते–सुनते सुनने का आदी हो जाता है। कथा सुने बिना उसे चैन नहीं पड़ता है।

3. कीर्तन–ऋजुयोग का तीसरा सोपान हरि कीर्तन है। प्रभु के गुणों का कीर्तन गाकर, रोकर, बैठकर, खड़े होकर, झूमकर तथा नाचकर, ताल स्वर के साथ, वाद्य यन्त्रों द्वारा जैसा भी आपको अच्छा लगे, इकट्ठे होकर भगवान के नाम और गुणों की चर्चा करना ही कीर्तन होता है। कीर्तन करने से मन प्रफुल्ल, आनन्दित, मस्त तथा आत्मविभोर होने लगता है। स्वाभाविक ही मन परमात्मा की तरफ आकर्षित होने लगता है। कीर्तन आदिकाल से सर्वश्रेष्ठ माना गया है। परन्तु कलियुग में तो कीर्तन करना मोक्ष का साधन माना गया है।

''कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।''

केवल नाम कीर्तन करने से मनुष्य इस संसार सागर से पार हो जाया करता है। यथा–हरेराम, हरेराम, हरे कृष्णा, हरे कृष्णा आदि आदि।

4. जप–ऋजुयोग की चौथी सीढ़ी का नाम 'जप' है। जप परमात्मा के नामों का, वेदमंत्रों का तथा पौराणिक मंत्रों का, किसी का भी हो सकता है। जिस देवी–देवता में आपकी आस्था या विश्वास रहता हो, उसी के नाम गुणों का जप कर सकते हैं। विधिपूर्वक मंत्रो का जप करने से उचित फलों की प्राप्ति होती है। शिव जी ने माता पार्वती से तीन बार कहा है–

जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात, सिद्धिर्वरातने।

हे वरानने! मैं तीन बार प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, कि जप से सिद्धि होती है, होती है, होती है।

वैदिक मंत्रों के जप की विधि विशेष होती है जिसे साधारण मनुष्य नहीं कर सकते। जबकि भगवन्नाम–जप में कोई कठिनाई नहीं है। इसे साधारण मनुष्य, स्त्री, शूद्र, रोगी, बच्चा, तथा बूढ़ा आसानी से कर सकता है। हर स्थिति में जागते, बैठते, चलते, दौड़ते, नहाते और सोते समय कर सकते हैं। आवश्यकता है आपके विश्वास, आस्था और श्रद्धा की। शरीर साफ सुथरा होना चाहिए। शौच के समय मानसिक जप किया जा सकता है, बस मन का भाव सही होना चाहिए। इससे सरल और सुगम प्राणी के लिये अन्य कोई साधन नहीं है।

अगर आपका शरीर हठयोग करने के लायक नहीं है, राजयोग कर नहीं सकते तथा योग के नियमों का यथोचित पालन कर नहीं सकते, तब आप मन से, बेमन से, जैसे भी बने प्रभुश्री हरि नामों का जाप करिये। गीता, रामायण, भागवत तथा महाभारत की कथायें सुनिये तथा सुनाइये। साधु पुरुषों का संग कीजिए तथा भगवान के नामों का कीर्तन करिये। एक दिन आप अवश्यमेव निर्वाणपद को पार कर लेंगे। पूर्वजों ने इसे ऋजुयोग, संक्षिप्त योग, सरल योग, मृदुयोग तथा सहजयोग के नामों से कहा है।

यह भी आवश्यक नहीं है कि ऋजुयोग के चारों अंग ही हों। चारों अंगों के बिना भी आप सिद्धि लाभ प्राप्त कर सकते हैं। चारों अंग स्वतंत्र हैं। केवल एक भगवत्कथा श्रवण करके भी परम पद को प्राप्त कर सकते हैं। केवल भगवान की कथायें श्रवण करके, उन पर मनन करते रहें, और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। महाराज परीक्षित इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। परीक्षित केवल कथा श्रवण से ही सर्वसण्गविनिर्मुक्त हो गये थे।

नहीं तो केवल कीर्तन ही किया करें। उठते, बैठते, भगवान के गुणों का कीर्तन करते रहें, उसी से प्रभु प्राप्ति हो जायेगी। इसमें सन्देह करना व्यर्थ है। देवर्षि नारद इसके प्रमाण हैं। चैत्यन्न महाप्रभु जोर–जोर से कीर्तन किया करते थे।

केवल सत्संग ही करते रहें। साधु–सज्जनों की सेवा करें, उनके वचनामृत सुनें। उनकी सब तरह से सेवा करें, आपको परमयोग की प्राप्ति सहजता से हो जायेगी। सत्संग के प्रभाव से ही बहुत से संसार सागर से पार हो गये। सत्संग से कई गुना फल मिलता है।

''सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।''

इसी प्रकार केवल जप क्रिया से समाधि लाभ प्राप्त किया जा सकता है। यथा–

''उलटा नाम लिया जग जाना, बाल्मीक भये ब्रह्म समाना''

ऋषि बाल्मीक ने उलटा राम का नाम, मरा, मरा जप कर ही ब्रह्मपद प्राप्त किया था। उन्होंने प्रभु राम के जन्म से दस हजार वर्ष पूर्व ही रामायण की रचना कर दी थी। प्रभु आपके भावों को परखते हैं। बस आप उन्हें याद करते रहिये अपने निर्मल मन से।

इसलिए आप अपनी श्रद्धा के अनुरूप सत्संग, भगवत्कथा, कीर्तन तथा जप चारों एक साथ कर सकते हैं तो सर्वोत्तम है। अगर चारों में से एक भी अपना सकते हैं तब भी आपको भगवान की प्राप्ति हो जायेगी। चारों ही ऋजुयोग हैं और चारों स्वतंत्र हैं। सब लोगों की केवल एक में निष्ठा होना भी असम्भव है। इसलिए अच्छा रहेगा कि कुछ काल तक भगवन्नाम, करें, कीर्तन करें कुछ भगवत्कथाओं का श्रवण किया करें। इसके फलस्वरूप आपका मन, भक्तिमय बना रहेगा। उसे इधर–उधर, ऊल फिजूल की बातें करने का अवसर ही नहीं मिलेगा। कहते हैं–खाली दिमाग शैतान का घर बन जाता है। सर्वसाधारण को ऋजुयोग साधना करना सरल है।

सद्गुरु चरणों में प्रणाम!

श्री मद्भागवत में विशुद्ध भक्ति

—हेमराज चोपड़ा, मंडी हि. प्र.

श्रीमद्भागवत अलौकिकता से परिपूर्ण ग्रंथ है। इसमें वर्णाश्रम, मानव धर्म, कर्मयोग, अष्टांग योग, ज्ञानयोग और भक्ति योग आदि भगवत्प्राप्ति के सभी साधनों का विशद वर्णन है, परन्तु ध्यान से देखा जाए तो इसमें भगवान की भक्ति का ही विशेष रूप से निरूपण किया गया है। साधन और साध्य दोनों प्रकार की भक्ति का वर्णन है। पहले ही स्कन्ध में कहा गया है–

स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्य प्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति।।

''मनुष्यों का सबसे उत्तम धर्म–परधर्म वही है जिससे श्री हरि में निष्काम और अव्यभिचारिणी भक्ति हो। भक्ति से आनन्द–स्वरूप भगवान को प्राप्त करके ही हृदय प्रफुल्लित होता है।

इसी प्रकार 12 वें स्कन्ध के अन्त में कहा गया है–

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोत्सव जायते।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो।।
नाम संकीर्तनं यस्य सर्व पाप प्रणाशनम।
प्रणामों दु:खशमनस्तं नमामि हरिं परम।।

हे देवदेव हे प्रभो! आप ही हमारे स्वामी हैं। ऐसी कृपा कीजिए जिससे जन्म–जन्म में आपके चरण कमलों में हमारी भक्ति होवे। जिनका नाम संकीर्तन सारे पापों का नाश करने वाला है और जिन्हें किया हुआ प्रणाम समस्त दुखों को शांत कर देता है, उन परमेश्वर श्री हरि को मैं नमस्कार करता हूं।

भक्ति की महिमा कहते हुए स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव जी से यहां तक कह दिया–

भक्त्या हमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्,
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्
वागगद्‌गदा द्रवते यस्य चितं
रुदत्य भीक्षणं हसति क्वचिच्च,
विलज्जउद्‌गायति नृत्यते च
मद्भक्ति युक्तो भुवनं पुनाति

हे उद्धव, मेरी अनन्य भक्ति जिस प्रकार मुझको सहज ही प्राप्त करा सकती है उस प्रकार न तो ज्ञान, न धर्म, न वेदों का स्वाध्याय, न तप और न दान ही करा सकता है। मैं संतों

का प्रिय आत्मा हूँ। एक मात्र श्रद्धा सम्पन्न भक्ति से ही मेरी प्राप्ति सुलभ है। दूसरों की तो बात ही क्या, जाति से चाण्डालादि को भी मेरी भक्ति पवित्र कर देती है। इसका उद्घोष भगवान श्रीहरि श्रीमदभगवद्गीता के नवमें अध्याय के 32 वे श्लोक में भी इस प्रकार कर रहे हैं–

मां ही पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयो नयः
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम

हे अर्जुन, स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि चाण्डालादि जो कोई भी हो वे भी मेरी शरण होकर परम गति को ही प्राप्त होते हैं।

मनुष्यों में सत्य और दया युक्त धर्म हो, तपस्यायुक्त विद्या हो परन्तु मेरी भक्ति न हो तो वे धर्म और विद्या उनके अन्तःकरण को पूर्ण रूपेण पवित्र नहीं कर सकते। मेरे प्रेम से जब तक शरीर पुलकित नहीं हो जाता, ह्रदय द्रवित नहीं हो उठता, आनन्द के आंसुओं की झड़ी नहीं लग जाती, तब तक मेरी भक्ति के बिना अन्तःकरण कैसे शुद्ध हो सकता है। भक्ति के आवेश में जिसकी वाणी गद्गद् हो गई हो, चित्त द्रवित हो गया है, जो कभी रोता है कभी हँसता है, कभी संकोच छोड़कर ऊँचे स्वर में गाने लगता है और कभी मस्ती में नाच उठता है ऐसा मेरा भक्त स्वयं भी पवित्र हो फिर तो कहना ही क्या। वह समस्त लोगों को पवित्र कर देता है।

जिस प्रकार अग्नि से तपाए जाने पर सोना मैल को त्याग देता है और पुनः तपाए जाने पर अपने स्वच्छ रूप को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार आत्मा भी भक्तियोग के द्वारा कर्म वासना से मुक्त होकर फिर मुझ भगवान को प्राप्त हो जाता है।

श्रीमद्भागवत के एक अन्य प्रकरण में जगन्नियंता भगवान श्री कृष्ण द्वारा गोपियों को सांत्वना देने हेतु उद्धव को पत्र लेकर उनके पास भेजने का वृतांत है। उद्धव बहुप्रकार से समझाकर उन्हें धैर्य धारण करने का उपदेश देते हैं। किन्तु गोपियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत उन्हें उद्धव पर दया आती है। वे तो अपने आपको अपने प्रियतम श्री कृष्ण से एक पल के लिए भी विलग नहीं मानती। उल्टा उन्होंने उद्धव को ही अपने श्री कृष्ण के प्रति विशुद्ध प्रेम की परिभाषा बतला दी। कवि ने इसे सुन्दरता से अपने शब्दों में इस प्रकार वर्णित किया है–

श्याम तन है, श्याम मन है,
श्याम है हमारो धन।
आठों पहर ऊधो हमें,
श्याम ही से काम है।
श्याम हिए श्याम जिए,
श्याम ही हमारे लिए,

अन्धे की सी लाकरी,
आधार श्याम नाम है
उधो! तुम भए हो बौरे
पाती लेके आए दौरे,
धैर्य हम राखे कहां,
यहां रोम रोम श्याम है,
रोम रोम श्याम है।

गोपियां स्वयं महान योगिनियां थीं। भक्तियोग की पराकाष्ठा उनमें थीं। इसी के अन्तर्गत वे हर समय भाव समाधि में रहा करती थीं। उनके मन में प्रतिपल भगवान श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई भाव आता ही नहीं था। उनका उठना, बैठना, खाना पीना, अन्य व्यवहार सब अपने आराध्य के ही निमित्त रहता था। उनकी अनन्य भक्ति व इतनी ऊँची यौगिक अवस्था से उद्धव स्वयं भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उनसे विदा लेते हुए वे स्वयं भी श्रीकृष्ण भक्ति में सराबोर हो चुके थे।

भक्ति के शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य—ये पांच भाव हैं। इनमें से कौन भाव श्रेष्ठ है, यह नहीं कहा जा सकता। अपने—अपने क्षेत्र में सभी भाव उत्तम हैं। जिस भक्त को जो भाव प्रिय है उसके लिए वही भाव सर्वोत्तम है। श्री हनुमान जी के लिए दास्य भाव ही सर्वोत्तम है। वे किसी भी दूसरे भाव के लिए क्या इस दास्य भाव का कभी परित्याग कर सके। श्री वसुदेव—देवकी या श्रीनन्द—यशोदा के लिए वात्सल्य भाव ही प्रधान है। गोपियां श्रीकृष्ण के लिए माधुर्य भाव से ओतप्रोत हैं। इसी प्रकार से अन्य भाव हैं। भक्त इनमें से चाहे किसी भाव में डूबा हो, उसे भगवद् प्राप्ति हो जाती है। इसमें अपने आप को खोना पड़ता है, मिटाना पड़ता है। अपने अहं को तिलांजलि देनी पड़ती है।

राजरानी मीरा ने सब लोक लाज छोड़कर अपने आप को पूर्ण रूप से कृष्ण प्रेम में रचा—बसा लिया था। यही कारण था कि उसे कई प्रकार की वेदनाएँ दी गई, उसके प्राण लेने का यत्न किया गया कभी विष देकर, कभी भयानक सांप भेजकर किन्तु उसके आराध्य देव भगवान श्रीकृष्ण हर बार उसके सहायक रहे। उसे हर समय हर जगह, अपने भीतर बाहर भी कृष्ण ही दृष्टिगोचर होते थे। यही नहीं अंतिम समय में उसके आराध्य देवाधिदेव भगवान श्रीकृष्ण ने उसे सशरीर अपने भीतर समाहित कर लिया। उसके निष्प्राण शरीर की जगह लोगों को कुछ पुष्प ही मिले। यह भक्तियोग की पराकाष्ठा थी। भगवान श्री कृष्ण श्रीमदभगवद्गीता के छठे अध्याय के 30 वे श्लोक में स्वयं कहते हैं—

यो मा पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि, स च मे न प्रणश्यति!

''जो मुझे सर्वत्र देखता है, सब जगह जिसे मैं ही दीखता हूँ और जिसे सब प्राणियों में मेरे ही दर्शन होते हैं, ऐसा मेरा भक्त जो है उसके लिए मैं क्षणमात्र के लिए भी अदृश्य नहीं होता हूँ और न ही वह कभी मेरी दृष्टि से ओझल होता है।''

यह स्थिति भगवान में अनन्य प्रेम, अव्यभिचारिणी भक्ति द्वारा ही आती है। इसके लिए उनके नाम का जप, उनके गुण प्रभाव, रहस्यतत्व के ज्ञानसहित उनके स्वरूप और लीलाओं का ध्यान आवश्यक है।

जीवन थोड़ा है। नाना प्रकार के विघ्नों से भरा है। जो समय बीत गया, वह तो गया ही, वह वापिस नहीं आएगा। अब शेष बचे जीवन के प्रत्येक क्षण को प्रभु सेवा में, उनके भजन में लगा देने में ही अत्यन्त कठिनता से प्राप्त हुए इस मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

कलियुग में भगवत्प्राप्ति के साधन बहुत सुगम हैं। भगवान के नाम संकीर्तन से ही सारा काम बन सकता है। सत्संग मिल जाए फिर तो कहना ही क्या? श्री मद्भागवत् में एक स्थान पर उद्धृत है–

तुलयाम लवेनापि न स्वर्ग नापुर्नभवम,
भगत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।

''भगवत्संगी अर्थात् नित्य भगवान के प्रेम में निमग्न अनन्य प्रेमी भक्तों के निमेषमात्र के संग के साथ हम स्वर्ग तथा मोक्ष की भी समानता नहीं कर सकते। फिर मनुष्यों के इच्छित पदार्थों की तो बात ही क्या है।''

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्।।
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।।

''हे राजन्, दोषों के खजाने कलियुग में एक ही यह महान गुण है कि भगवान श्रीकृष्ण के कीर्तन से ही मनुष्य आसक्ति रहित होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। सत्ययुग में ध्यानयोग से, त्रेता में बड़े-बड़े यज्ञों से और द्वापर में विधिपूर्वक पूजा अर्चना के द्वारा भगवान की उपासना करने वाले को जो फल मिलता है वही कलियुग में केवल श्री हरि के नाम संकीर्तन से ही मिल जाता है।''

अतएव भक्ति श्रद्धापूर्वक श्री भगवान के नाम-गुणों का जप कीर्तन, महापुरुषों का संग एवं धार्मिक सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करके मनुष्य जीवन को सफल बनाने की चेष्टा प्राणपण से करना श्रेयस्कर है।

प्राकट्य तिथि : रामनवमी

योगेश्वर प्रभु राम लाल

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी

अवतारवाद का सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है। यों तो इस्लाम की भी मान्यता है कि संसार के विभिन्न क्षेत्रों में उस क्षेत्र की भाषा, जनता और संस्कृति के अनुरूप जनकल्याण हेतु एक लाख चौबीस हजार पैगम्बर (अवतार) आते रहेंगे जिनका उद्देश्य संसार के प्राणियों को बुराइयों से दूर करके उन्हें आत्मकल्याण और श्रेय मार्ग का पथ प्रदर्शित करना होगा। भारतीय वाङ्मय में प्रमुख दस और चौबीस उप अवतार हैं। सामान्यतः अवतारों की गणना करते समय हम एक बात भूल जाते हैं कि राक्षसों का नाश करने वालों की ही अवतारों में गणना करते हैं, केवल कल्याण करने वालों की नहीं। प्रत्येक अवतार ने अपनी-अपनी रीति से राक्षसों (असामाजिक व्यक्ति और आततायियों) का संहार किया, समाज को जाग्रत किया और जन सहयोग से पुनः कल्याणमयी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की।

हर युग की एक परम्परा, रीतिरिवाज और जीवन शैली रही है जिसे संस्कृति की संज्ञा दी जाती है। उन तत्कालीन परम्पराओं में बाधा पहुँचाने वाले संस्कृति विनाशकों को दंडित अथवा उनका संहार करना और मानवधर्म के अनुयाइयों की रक्षा और स्थापना करना अवतारों का प्रयोजन रहा होता है। संक्षेप में अवतार के तीन प्रमुख उद्देश्य होते हैं–

1. अच्छाई–बुराई के मापदण्ड स्थापित करना (यानी–टू ऐजूकेट द मासेज) अर्थात् सच क्या है और झूठ क्या है यह बताया जावे क्योंकि बिना मर्यादा निर्धारण के दंड का औचित्य सिद्ध नहीं हो पायेगा।

2. चमत्कारों द्वारा भगवान की सत्ता और उपस्थिति का लोगों को भान कराना ताकि मनुष्य के मन में उत्पन्न अहंकार, कि-मैं ही सर्वशक्तिमान और कर्ता हूँ, और भ्रम का नाश हो और जन मानस में इस तथ्य की अनुभूति हो कि सांसारिक मानवीय शक्ति के अतिरिक्त भी कोई आध्यात्मिक (सुपरनेचुरल) शक्ति है।

3. जब उस भू–भाग के जन समुदाय का इतना मानसिक और आध्यात्मिक विकास हो जावे कि अवतार द्वारा बताये गये मार्ग के अनुसार अच्छा और बुरा, उपयोगी–अनुपयोगी, करणीय और अकरणीय का अंतर समझ सकें तब अवतार द्वारा चमत्कार प्रदर्शन बंद करके (जैसा कि भगवान कृष्ण ने मोरध्वज द्वारा अपने पुत्र का आरी से चिरा हुआ सिर जोड़ा अथवा द्रौपदी का चीर बढ़ाया) तिरोधान हो जाना दूसरे शब्दों में ''मिराकल्स आर विद् ड्रान''।

प्रश्न उठता है कि, आगे पंक्तियों में जिन महापुरुष योगेश्वर प्रभु रामलाल जी का परिचय

दिया जा रहा है, इस अवतार का प्रयोजन क्या था? रामलाल जी, जिन्हें उनका शिष्य परिवार "प्रभु जी" के नाम से जानता है, के सम्बन्ध में दक्षिण भारत के नाड़ी ग्रन्थ (उत्तर भारत की भृगसंहिता की भाँति) में यह बात स्पष्ट रूप से वर्णित है कि श्री प्रभु जी जगत की आधारभूत शक्ति के अवतार हैं तथा अन्य विवरण भी स्पष्ट हैं। अवतार का उद्देश्य परिस्थितियों पर निर्भर करता है। चूँकि लम्बे समय तक गुलामी के कारण भारतवासियों की दशा हीन हो चुकी थी, मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा आर्ष ग्रन्थों की होली जलाने और पुस्तकों से रानियों के लिए पानी गरम करने से योग विद्या भी लुप्तप्राय हो चुकी थी। अत्याचारों से पीड़ित जनता ने भक्ति और प्रार्थना मार्ग अपना लिया था, अंग्रेजी दासता हमें उस परम्परा से भी परे हटा रही थी। ऐसे में आवश्यकता थी ऐसे महापुरुष की जो युग धर्मानुकूल **प्राचीन योग विद्या** का पुनर्जागरण करे और दासता के विरुद्ध चलने वाले आन्दोलन के साथ ही अपनी प्राचीन संस्कृति के देवतत्व और दैवत्व की स्थापना थी। इसके लिए आवश्यक था योग विज्ञान का ज्ञान और उसका प्रचार प्रसार।

रामनवमी का पुण्य पर्व भारतीय जनमानस के लिए प्रेरणा और कर्त्तव्य पालन का दिन है जब महर्षि अरविन्द, स्वामीदयानन्द और रामकृष्ण परमहंस की परम्परा में योगयोगेश्वर महाप्रभु रामलाल जी का जन्म हुआ। संक्षेप में प्रभु जी के अवतार का प्रयोजन निम्नस्थ था–

1. योग विज्ञान के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान का प्रसार–

यों तो समय–समय पर योगासनों और उनकी उपयोगिता पर पुस्तकें लिखी जाती रही थी परन्तु उनकी उपयोगिता शरीर के रोगों तक ही सीमित थी। श्री प्रभु जी ने (नौ) क्रियाओं के समुच्चय की साधना विशेष बताई जो **"जीवन तत्व साधन"** के नाम से जानी गई। ये क्रियायें निज निर्मित थीं। इन क्रियाओं की विशेषता यह है कि ये शिरोपाद समग्र शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हैं तथा इन्हें रुग्ण (शिथिल) वृद्ध स्त्री–पुरुष सभी कर सकते हैं। इन्हें थोड़े समय करने पर व्यक्ति स्वस्थ रहता है और कुछ अधिक समय तक करने पर अत्यधिक रुग्ण व्यक्ति भी स्वस्थ हो जाते हैं।

भूदान प्रणेता आचार्य संत विनोबा भावे ने प्रभुजी के शिष्य योगिराज चन्द्र मोहन के निर्देशन में चल रहे योग शिविर में इनका सत्यापन किया था।

2. हठयोगी की उच्चतर क्रियाओं का ज्ञान दान–

सुपात्र (ऐलिजीबिल) को ही ज्ञान मिले इसलिए भारतीय शास्त्रों में मंत्रादि और योग क्रियाओं को गोपनीय कहा गया है। पराधीनता की दीर्घावधि में योग की उच्चतर क्रियायें भी लगभग विलुप्त हो गई थीं। श्री प्रभु जी ने–नेति, धौति, आदि षट्कर्म तथा बजौली, सहजौली, अमरौली और खेचरी मुद्रा जैसी अनेक दुरुह क्रियाओं (जिनका केवल वर्णन ही मिलता था) का विधिपूर्वक ज्ञान प्रदान किया जिससे इनकी कार्यविधि (प्रोसेस) पुनः प्रचलन में आई।

श्री प्रभुजी द्वारा स्थापित आश्रमों (योग साधन आश्रम ऋषिकेश; श्री सिद्ध गुफा आश्रम–सवाई, आगरा तथा आन्ध्र प्रदेश में) में उनके शिष्य (योगिराज चन्द्रमोहन–जिनका गोरक्षपीठ से निरंतर सम्पर्क बना रहा था) तथा योगिराज मुलखराज जी के शिष्य तथा पौत्र प्रपौत्र शिष्यों द्वारा अमृतसर, दिल्ली आदि में चल रहे आश्रमों में यह प्रशिक्षण दिया जा रहा है। वर्तमान में लखनऊ में –ब्रह्मचारी ओम प्रकाश, सवाई में ब्रह्मचारी डॉ. दासलाल (जो प्रतिवर्ष गोरक्षपीठ में होने वाले योग सम्मेलन में पधारते हैं) कुरुक्षेत्र में योगिनी उमा, तथा ऋषिकेश में आचार्य पूर्णचन्द्र शर्मा योगिराज चन्द्रमोहन जी के शिष्य हैं तो दिल्ली में योगिराज देवीदयाल के पुत्र श्री लाल जी के दिव्य योग मंदिर के कार्यक्रम टी. वी. पर जीवन तत्व साधन की शिक्षा दे रहे हैं। कहने का अभिप्राय यह कि सन् 1920 के आसपास इन क्रियाओं का प्रचार प्रसार जन साधारण में नहीं था उनका हमारे आश्रमों से ही प्रचार प्रसार श्री प्रभुजी द्वारा प्रारम्भ हुआ था।

3. शक्तिपात दीक्षा द्वारा चरमलक्ष्य की ओर बढ़ाना–

आर्ष ग्रन्थों में दो प्रकार की साधना बताई गई है–

(अ) साधन योग–इसमें साधक योग साधना करता हुआ शनैः शनैः आगे बढ़कर चरम लक्ष्य की प्राप्ति करता है।

(ब) सिद्धयोग–इसमें पूर्ण सिद्ध पुरुष की कृपा से, शक्तिपात द्वारा, साधक का इतना आध्यात्मिक उत्थान हो जाता है जिसे वह अनेक जन्मों में प्राप्त कर पाता। परन्तु सिद्धयोग का दाता भी तो वही हो सकता है जिसके पास देने को सम्पदा तो हो। सन् 1914 से श्री प्रभुजी ने संस्कारी बच्चों को शक्तिपात दीक्षा देकर योगमार्ग में प्रवृत्त किया था। षड्चक्रों का क्रम से ध्यान कराकर उनमें लयता प्रदान कराई। साधना काल में श्री प्रभुजी अपने बच्चों को लोक लोकान्तरों के दर्शन भी करा देते थे ताकि विश्वामित्र की भाँति उसकी साधना भंग न हो जाये। यह बात महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज तर्क संगत मानते हैं और गीता भी।

यहाँ यह लिखना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि पूज्य **देवरहा बाबा** को खेचरी श्री प्रभुजी ने ही सिद्ध कराई थी। हंस महाराज भी प्रभुजी के कृपा पात्र थे। विश्व प्रसिद्ध लेखक–योगी स्वामी शिवानन्द भी योगसाधन आश्रम ऋषिकेश में श्री प्रभुजी की शक्ति और साधना के साक्षी रहे हैं। अवतारी पुरुष की उद्देश्य और कार्यपूर्ण होते ही वे तिरोहित हो जाते हैं। श्री प्रभुजी ने हठयोग और सिद्धयोग की परम्परा और योगाचार्यों की एक पंक्ति तैयार की जो आज भी उनके कार्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित कर रही है। गोरक्षपीठ के वार्षिक योग सम्मेलन में पूर्व में योगिराज चन्द्रमोहन और वर्तमान में उनके शिष्य ब्रह्मचारी डॉ. दासलाल का प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

"प्रभुजी को प्रणाम"

योगेश्वर प्रभु रामलाल को।
जन्मोत्सव पर प्रणाम मम्।।
अमृतसर पंजाब प्रांत प्रगॅट प्रभु।
गंडाराम पितु नाम है।।

रामनोमी को राम तुम।
नर तन धर आये प्रभु।।
भाग्यवन्ति के लाल बन।
सबके मन भाये प्रभो।।

हो ब्रह्मा के रूप तुम।
तुम महेश अवतार हो।।
विष्णु रूप त्रिदेव को।
मम् प्रणाम स्वीकार हो।।

अद्‌भुत तेरी शक्ति है।
अद्‌भुत तेरे काम हैं।।
अद्‌भुत दर्शन आपका।
अद्‌भुत तेज ललाम है।।

मन मेरा चंचल बड़ा।
भगता चहुँ ओर है।।
नाथ सम्हालो तुम इसे।
तुमको सौंपी डोर है।।

इस नश्वर संसार से।
चित्त को मेरे मोड़ दो।।
बहिर मुखी वृत्ति रोक कर।
अन्तर में उसे जोड़ दो।।

शरण प्रभु की जिसने गही।
बड़भागी वह जीव है।।
विमुख है जो प्रभु राम से।
मंद भागी वह जीव है।।

जय गुरु देव !

—अनिल दुबे, दतिया

सिद्धयोग पत्रिका आय व्यय 2017–2018

आय	रुपये	व्यय	रुपये
बैंक में पिछला जमा	439936	छपाई कागज	158100
वार्षिक शुल्क	170560	लिफाफे	8000
सहयोग राशि	76960	कार्यालय खर्च	15000
मनी आर्डर	3280	बैंक मे जमा	531987
बैंक ब्याज	22351		
कुल योग	713087–00		713087–00

सहयोग राशि के नाम 2017–2018

1. श्री शिवचरन पानीपत	1100
2. श्री रजनीश वाचस्पती नागंल	1100
3. श्री जे. पी. गुप्ता कोटा	1001
4. श्री मंगलदत्त शर्मा करनाल	500
5. श्री दिनेश चन्द्र गुप्ता करोली	500
6. श्री रामचन्द्र मलिक हरियाणा	1000
7. श्री ललित शर्मा फालका (हरियाणा)	2000
8. श्री ब्रजेन्द्र वत्स गोहना	500
9. श्री हरकेश भारद्वाज गोहना	500
10. श्री रविकान्त गुड़गाँव	110
11. श्री साहिब सिंह जालोन	1001
12. श्री सुमित कुमार त्यागी सोनीपत	2100
13. श्री देवेन्द्र अग्रवाल लखनऊ	10000
14. श्री निखिल चौरसिया दतिया	1001
15. श्री अखिल चौरसिया दतिया	1001
16. श्री राजवर्धन सागर	1001
17. श्री ईशान चौरसिया दतिया	1001
18. श्री त्रिपुरारी पाण्डेय बलिया	5000
19. श्री अणिमा उपाध्याय मिर्जापुर	100
20. श्री शंकरलाल साहू शिवपुरी	2100
21. श्री श्याम लाल चौधरी हिसार	21300
22. श्री पारस सांगवान हिसार	500
23. श्री उमेश चन्द्र गुप्ता आगरा	5001
24. श्री सौरभ अग्रवाल धनबाद	500
25. श्री परमानन्द कलकत्ता	100
26. श्री सुरेश शर्मा कुरुक्षेत्र	500
27. श्री सोचन प्रजापति	310
28. श्रीमती मीनाक्षी बैंगलोर	100
29. श्री ईश्वर दत्त शर्मा जीन्द	1100
30. श्री जयकुमार शर्मा हरियाणा	500
31. श्री रमेश कुमार मेहता मण्डी	1100
32. श्री सुरेन्द्र पाल करनाल	500
33. श्री प्रभाकर चतुर्वेदी मैनपुरी	501
34. श्री तेजवीर सिंह आगरा	1100
35. श्री किशनलाल शर्मा हरियाणा	1100
36. श्रीमती ओमवती शर्मा हापुड़	500
37. श्री खगेश शर्मा गोहना	101
38. जमुना नगर	1100
39. श्री किशोरी लाल शर्मा दतिया	500
40. श्री जनक प्रसाद द्विवेदी झाँसी	1100
41. श्री रामवृक्ष यादव इलाहाबाद	500
42. श्री निर्मल कुमार कुलश्रेष्ठ ग्वालियर	500
43. श्री उमेशचन्द्र शर्मा आगरा	1100
44. श्री गिरधारी गुप्ता करौली	751
45. श्री घनश्याम गुप्ता गंगापुर	500
46. श्री मदन मोहन गुप्ता गंगापुर	500
47. श्री गोविन्द प्रसाद गुप्ता गंगापुर	500
48. श्री राजेन्द्र प्रसाद गुप्ता गंगापुर	500
49. श्री विनोद कुमार गोयल गंगापुर	500
50. श्री विष्णु चन्द्र गोयल गंगापुर	500
51. श्री राजेन्द्र धापसून गंगापुर	500
52. श्री सतीश चन्द्र शर्मा गंगापुर	500

कलाकलकिंतो लोको बन्धवो भवबन्धनम्।
भोगा भवमहारोगास्तृष्णाश्च मृगतृष्णिका:।।
शत्रवश्चेन्द्रियाण्येव सत्यं यातमसत्यताम्।
प्रहरत्यात्मनैवात्मा मनसैव मनो रिपु:।।
आगमापायिनो भावा भावना भवबन्धिनी।
नीयते केवलं क्वापि नित्यं भूतपरम्परा।।

'यह संसार कला के रस (विषयानुसंधान) से कलकिंत है, बन्धुजन सांसारिक बन्धन हैं, भोग संसार के महारोग हैं, तृष्णा मृगतृष्णा है। इन्द्रियाँ ही शत्रु हैं, सत्य भी अज्ञानद्वारा असत्य हो गया है, आत्मा ही अपना शत्रु होकर मन द्वारा ही मन को तंग विषय–वासना बन्धन का ही संसार में कारण है। काल समस्त प्राणियों को न जाने कहाँ लिये जा रहा है ?

–महर्षि वशिष्ठ

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20 APRIL 2018

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

□□□□□□

कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्धया तृणमिव यः समवैति वै परस्वम्।
भवति च भगवत्यनन्यचेताः पुरुषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम्॥

जो एकान्त में पड़े हुए दूसरे के स्वर्ण को देखकर भी उसे अपनी बुद्धि के द्वारा तृण के समान समझता है और निरन्तर भगवान् का अनन्य भाव से चिन्तन करता है उस नर श्रेष्ठ को तुम विष्णु का भक्त जानो।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा